अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

मार्च, २०१२

दूसरा दशक
पुस्तकालय भवन का उद्घाटन समारोह

15 मार्च को जोधपुर जिले के बाप गांव में पुस्तकालय और ज्ञान विज्ञान केन्द्र के नए भवन के उद्घाटन के अवसर पर एक समारोह हुआ। समारोह में ग्रामीण क्षेत्र के सैकड़ों महिला-पुरुषों व दूसरा दशक से प्रशिक्षित किशोर-किशोरियों ने भाग लिया। इस क्षेत्र में पुस्तकालय और विज्ञान के लिए इतने बड़े भवन का लोकार्पण बड़ी घटना थी। पुस्तकालय में 3 हजार से अधिक किताबें, नक्शे व चार्ट्स आदि उपलब्ध हैं जबकि विज्ञान केन्द्र में शरीर विज्ञान, भौतिक विज्ञान के उपकरण व मॉडल तथा रसायनशाला है। पुस्तकालय भवन के लिए लाला दीवानचंद ट्रस्ट नई दिल्ली व विज्ञान भवन के लिए बेल्जियम के ट्रस्ट ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

समारोह में दूसरा दशक परियोजना की कार्यकारी समिति के अध्यक्ष व पूर्व केन्द्रीय शिक्षा सचिव अनिल बोर्दिया ने कहा कि पुस्तकालय व विज्ञान केन्द्र होने से इस क्षेत्र के लोगों को बहुत लाभ होगा। क्षेत्रीय विधायक ओम जोशी ने कहा कि दूसरा दशक परियोजना ने शिक्षा के क्षेत्र में जो अलख जगाई है वह सराहनीय है। शिक्षाविद् रमेश थानवी ने कहा कि पढ़ाई की यात्रा कभी रुकती नहीं। थानवी ने किताब को दुनिया की खुली खिड़की बताते हुए उपस्थित लोगों से इसका लाभ उठाने का आह्वान किया। अतिरिक्त जिला कलक्टर मानाराम पटेल ने दूसरा दशक की गतिविधियों की सराहना करते हुए कहा कि यह संस्था शिक्षा के सभी क्षेत्रों में लोगों को जागरूक करने का प्रयास कर रही है। इस अवसर पर दूसरा दशक से प्रशिक्षित मरवत, सम्मू व प्रकाश ने बताया कि किस प्रकार दूसरा दशक से जुड़ने से उनमें मजबूती आई है।

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ३७ अंक : ३
मार्च, २०१२
फाल्गुन-चैत्र वि.सं. २०६८

□
सम्पादक
रमेश थानवी

□
प्रबन्ध संपादक
प्रेम गुप्ता

□
प्रकाशन संपादक
दिलीप शर्मा

□
- एक प्रति पन्द्रह रुपए
- वार्षिक सहयोग राशि एक सौ पचास रुपए
- संस्थाओं के लिए दो सौ पचास रुपए
- व्यक्तिगत सदस्यों के तीन वर्ष का चार सौ रुपए
- संस्थाओं के लिए तीन वर्ष का छः सौ रुपए
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि पन्द्रह सौ रुपए

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र
जयपुर-३०२ ००४
फोन - २७०७६९८, २७००५५९
फैक्स - ०१४१-२७०७४६४
ई मेल - raeajaipur@indiatimes.com
thanviramesh@gmail.com

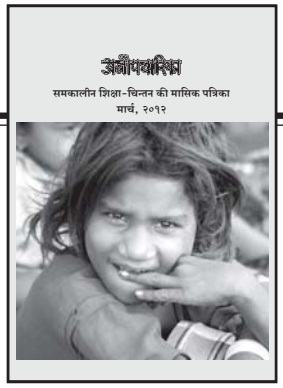

क्रम

बापू ने कहा : २

अपनी बात : अध्यापक की योग्यता ३

५

लेख :
दर्शनशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन

व्याख्यान : गो, किस द वर्ल्ड ११

संगीत व शिक्षा : हिन्दुस्तानी फिल्म संगीत १५

१६

कविता : मेरा होना

लेख : पड़ौसी पाठशाला १९

मुलाकात : विजय दान देथा २३

किताबें : हिरोशिमा का दर्द २६

रपट : भारतीय छात्रों का पिछड़ापन २९

संवाद : शिक्षा के सच की तलाश ३१

पाठक अब इंटरनेट पर अनौपचारिका नीचे लिखे लिंक पर ऑन लाइन पढ़ सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/march-2012

अनौपचारिका के पिछले अंक भी आप नीचे लिखे लिंक पर देख सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/feb-2012

बुनियादी शिक्षा

किसी दस्तकारी के जरिये बालक की बुद्धि के विकास की कोशिश करने को बुनियादी शिक्षा कहते हैं।

अगर मेरे पास कबीर जैसे जुलाहे हों, तो मैं अवश्य विद्यापीठ की लगाम उनके हाथों सौंप दूं।

उद्योग की शिक्षा में बुद्धि की शिक्षा यानी बुद्धि का विकास छिपा ही हुआ है।

मैं तो यह भी कहने की धृष्टता करता हूं कि उद्योग की शिक्षा के बिना बुद्धि का सच्चा विकास सम्भव है ही नहीं।

शिक्षा का असली मुद्दा ग्रामोद्योग है, जिसके द्वारा बच्चे का पूरा-पूरा विकास किया जा सकता है।

मेरा विश्वास है कि बुद्धि का सच्चा विकास उस शिक्षा द्वारा होना चाहिए जिसमें शरीर के अंगों -हाथ, पांव, आंख, कान, नाक आदि का व्यायाम हो।

ऐसी शिक्षा बुनियादी शिक्षा-प्रणाली द्वारा ही हो सकती है जिससे बालक के शरीर, मन और आत्मा का पूरा विकास हो।

बुनियादी शिक्षा में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक दस्तकारी की यांत्रिक क्रिया ही न सिखाकर उसके मूल अर्थात् क्यों और कहां से आरम्भ होने की बात भी समझाई जाए।

बुनियादी शिक्षा द्वारा देश फिर अपनी पुरानी दस्तकारी का असली प्रशिक्षण प्राप्त कर लेगा।

प्रारंभिक शिक्षा में बच्चों को ग्रामोद्योग द्वारा-विशेषकर कताई और बुनाई के साथ शुरू कराना चाहता हूं।

बुनियादी शिक्षा देशी की आवश्यकता पूरी कर सकती है ।

भारत के ८० फीसदी देहातियों का उद्धार करने के लिए उनके बच्चों को बुनियादी तालीम देना लाज़िमी हो जाना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा यदि गांवों में स्थानीय परिस्थिति के अनुसार व्यवस्थित की जाय तो वह न सिर्फ अपने खर्च को निकाल लेगी बल्कि अपने छात्रों को भी भावी जीवन के लिये तैयार कर देगी। ❑

बापू ने कहा

अध्यापक की योग्यता !

पिछले दिनों मध्यप्रदेश शासन ने अपने ही अध्यापकों की एक परीक्षा ली। परीक्षा में उन्हीं कक्षाओं के पाठ्यक्रम में से प्रश्न पूछे गये जिन कक्षाओं को वे पिछले कई वर्षों से पढ़ा रहे हैं। सरकारी आदेश था तो अध्यापक कहां जाते ? परीक्षा में बैठना ही था। अध्यापक परीक्षा में बैठे और बहुत सारे अध्यापक असफल रहे। ठीक से याद नहीं मगर संभवतया सौ में से अस्सी अध्यापक असफल रहे होंगे। मध्यप्रदेश शासन ने इसे अध्यापकों की असफलता माना। उनकी योग्यता पर सवालिया निशान लगाया और अपने शासकीय अंदाज में उनको नीचा भी दिखाया।

शासन और शासकों ने नहीं सोचा कि परीक्षा किस की ली जा रही है। शासन की नजरों में कार्यरत अध्यापक यदि आयोग हैं तो यह असफलता शासन की अपनी असफलता है। इतना ही नहीं यदि शासकीय अधिकारियों के लिये ऐसी परीक्षा ली जाती तो वे भी भारी तादाद में असफल रहते। यदि ऐसी ही परीक्षा हमारे देश के मंत्रीमहोदयों के लिये आयोजित की जाये तो उनमें से भी अधिसंख्य लोग असफल होंगे और अयोग्य करार दिये जायेंगे।

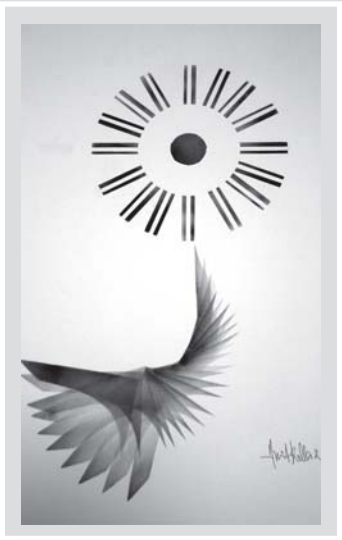

अब प्रश्न यह है कि यदि केवल अध्यापकों की परीक्षा पर विचार किया जाये तो उससे दो निष्कर्ष निकल कर आते हैं। पहला तो यह कि अध्यापक मन लगाकर नहीं पढ़ाते और दूसरा यह कि जो पाठ्यक्रम बालकों पर थोपा गया है वह घनघोर रूप से लचर है और अप्रासंगिक है। उसका जीवन से कोई रिश्ता नहीं है। न केवल बालकों को वह पाठ्यक्रम प्रिय लगता है बल्कि अध्यापकों के लिये भी वह निरा बेजान और अप्रिय पाठ्यक्रम है। अध्यापकों की परीक्षा लेने से पहले यह भी विचार किया जाना चाहिए कि बालकों के मन पर किस अध्यापक की कैसी छाप है ? किस अध्यापक ने किस

बालक को इतना प्रभावित या उतना प्रभावित किया है कि वह बालक या छात्र अपने जीवन में उस अध्यापक की छवि को साथ लिये चलता है और उसके व्यवहार से अपने व्यवहार को निर्मित एवं निर्धारित करता है। आज की स्कूली शिक्षा के नाकारापन के बावजूद यह एक बड़ा सच है कि कोई न कोई अध्यापक किसी न किसी प्रकार से बालकों का सद्भावी मित्र और सच्चा मार्गदर्शक बना हुआ है। इसे देखते हुए आशा की एक किरण दूर तक चमकती दीखती है कि **बात अभी पूरी तरह से डूबी नहीं है। उम्मीद बाकी है और बाकी रहेगी भी।**

एक पुरानी कहावत है कि -

गुरु जो करे वो तुम मत करो, मगर गुरु जो कहे वैसा जरूर करो।

इस कहावत में गुरु के निजी जीवन में खामियां या कमियां न निकालने का संदेश भी है और गुरु के विवेकवान कथन के प्रति आस्था बनाये रखने का एक संदेश भी है। देखना हमें यह है कि हम आज के अध्यापकों की योग्यता को कहां देखें और कैसे उसका मूल्यांकन करें? प्रश्न यह भी है कि अध्यापकों का मूल्यांकन कौन करे ? मूल्यांकन से पहले देखा यह भी जाना चाहिए कि आज की स्कूलों में अध्यापकों के शैक्षिक उन्नयन की जिंदा व्यवस्थाएं क्या हैं ? जिंदा व्यवस्थाओं से मेरा आशय उन प्राणवान प्रयासों से है जो अध्यापकों को नयी ऊर्जा दे सकें और प्राणदायी अवसरों से जोड़ सके। शासन आज यह नहीं सोचता है कि शिक्षा की जड़ को कहां से सींचा जा सकता है। शासन अपनी तरफ भी नहीं देखता है कि कैसे अर्द्धशिक्षित और अशिक्षित लोग कुर्सियों और पदों पर आसीन है।

यह एक अलग बात है कि पहली व्यवस्था शासन को शिक्षित करने की भी की जानी चाहिये। शासन की सतत शिक्षा की व्यवस्था दरअसल विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों को सौंपी जानी चाहिये और फिर शासन और शिक्षा के बीच एक जाग्रत संवाद का आयोजन किया जाना चाहिये। अगर ऐसा हो सके तो संभवतया हमारे विद्यालय, महाविद्यालय और अध्यापकों का सहज उन्नयन तुरन्त संभव हो सकता है। और यदि दृष्टि केवल अध्यापकों एवं प्राध्यापकों के दोष दर्शन पर टिकी रही तो न तो अध्यापकों का विकास होगा और न विद्यालयों के स्तर में कोई शीघ्र सुधार संभव होगा। दोष दर्शन से ज्यादा अच्छा है कि हम अध्यापकों को समुचित सम्मान दें। उनको अभिव्यक्ति की आजादी दें और नौकरशाहों की लालफीता शाही से उनको मुक्त करके उनके उत्थान और उन्नयन की शुद्ध शैक्षिक व्यवस्थाओं को सुनिश्चित करें। ❑

रमेश थानवी

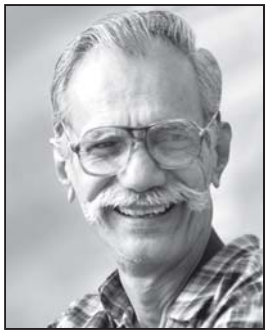

दर्शनशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन

❑

प्रो. शिवनारायण जोशी 'शिवजी'

दर्शनशास्त्र के अध्ययन एवं अध्यापन पर यह अनन्य आलेख हमारे लिये भाई शिवजी ने विशेष आग्रह पर लिखा है। हिन्दी में संभवतया इस विषय पर ऐसा कोई सुबद्ध एवं समग्र आलेख पहली बार प्रकाशित हो रहा है। पाठक इसे आत्मश्लाघा न समझें यह सिर्फ लेख की गुणवत्ता एवं अर्थवत्ता से अभिभूत होकर कहा जा रहा है। इसलिये भी कहा जा रहा है कि पाठक तुरन्त इसे पढ़ लेने की ओर दौड़ पड़ें। इस लेख की विशेषता यह है कि यह न केवल दर्शनशास्त्र को समझने की प्रेरणा देता है बल्कि अपने जीवन को समझने और विश्लेषित करने की कुशलता भी देता है। पाठक इसे पढ़ कर अपने आपसे संवाद करना सीखेंगे ऐसा हमारा विश्वास है। भाई शिवजी न केवल दर्शनशास्त्र के विभागाध्यक्ष रहे हैं बल्कि वे विश्व प्रसिद्ध छायाकार भी हैं। उनका पता और फोन नं. लेख के अंत में दिया जा रहा है। आप उनसे सीधा संवाद कर सकते हैं। ❑ सं.

स्थान-**एथेन्स**-दृश्य **एथेनिअन कवि अगाथन का घर।** एक भोज का अवसर जिसमें नगर के प्रसिद्ध कवि, कलाकार, नाटककार, चिन्तक आदि एकत्रित हुए हैं। ग्रीक थिएटर में अपने एक नाटक को प्रथम पुरस्कार मिलने के उपलक्ष्य में **अगाथन** ने यह आयोजन किया। आगन्तुक अतिथियों के मध्य चर्चा चल पड़ी, विषय था-**प्रेम क्या है ? फेडरस** चर्चा प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि 'प्रेम सब देवताओं में प्राचीनतम और शक्तिशाली है जो साधारण युवक को भी नायक बना देता है, क्योंकि कोई भी प्रेमी अपनी प्रेमिका के समक्ष लज्जित होना नहीं चाहता, यदि मुझे प्रेमियों की सेना मिल जाए तो मैं सारी दुनिया को जीत सकता हूं'। **पौसानिअस** स्थूल और सूक्ष्म प्रेम में भेद करते हुए कहते हैं कि 'भौतिक प्रेम दो शरीरों के बीच का आकर्षण मात्र है, जबकि दैवीय प्रेम दो आत्माओं के बीच का साम्य है।' हास्य कवि **एरिस्टोफेनीज** पौराणिक कथा के माध्यम से प्रेम की व्याख्या करते हैं और भी कई उपस्थित अतिथिगण प्रेम को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। अन्त में विशिष्ट अतिथि **सुकरात** को अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है।

सुकरात अत्यन्त विनम्रता से बोलना प्रारंभ करते हैं-'इतने प्रभावशाली विचार सुनने के बाद मैं मूक हो गया हूं। मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि मेरी अज्ञता आप लोगों की विद्वता से कैसे बराबरी कर पाएगी ?' इतना कहने के बाद **सुकरात** उन विद्वानों से अपनी चिर-परिचित शैली में संवाद करते हैं, जिसमें अपने सटीक और अनुत्तरित प्रश्नों से पूर्व वक्ताओं की सभी युक्तियों को तार-तार कर देते हैं। जो वक्ता थोड़ी देर पहले स्वयं को विद्वान समझ रहे थे अब **सुकरात** के सामने अपने को असहाय और अज्ञ

अनुभव करने लगते हैं। तत्पश्चात **सुकरात** प्रेम की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि '**प्रेम दैवीय सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए मानवीय आत्मा की भूख है। प्रेमी सौन्दर्य को प्राप्त करने मात्र के लिए उत्सुक नहीं रहता अपितु इसे अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए मरणधर्मा शरीर में अमरता का बीज बोने के लिए प्रयासरत रहता है। इसलिए विपरीत लिंग निरन्तर बने रहने के लिए एक दूसरे से प्रेम करते हैं। अत: प्रेम सौन्दर्य है। सौन्दर्य सत्य है और सत्य वह मार्ग है जो सीधा ईश्वर तक पहुंचता है।** सभी अतिथिगण सांस रोके सुन रहे थे। जैसे ही **सुकरात** का वक्तव्य पूरा हुआ सभा-सदन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

उपयुर्क्त संवादात्मक पद्धति को दर्शनशास्त्र के शिक्षण की मानक पद्धति और **सुकरात** को आदर्श शिक्षक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। दर्शन का स्वभाव अन्य विषयों से भिन्न है। दर्शन का अध्यापक बन कर अध्यापन सही ढंग से नहीं किया जा सकता। अध्यापकपने में ज्ञान का अहंकार रहता है। यह अहंकार दर्शन की गूढ़ गुत्थियों को सुलझाने में बाधक होता है। यही अध्यापकपना शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच ज्ञानी-अज्ञानी की गहरी खाई बना देता है। शिक्षक-शिक्षार्थी की यह दूरी सत्य के सम्प्रेषण में बाधक बन जाती है। 'ज्ञानी' अध्यापक यह मान कर चलता है कि वह यह जान चुका है कि सत्य क्या है, उसे अब और अध्ययन या ज्ञान की अपेक्षा नहीं। विद्यार्थी को वह निपट अज्ञानी मानता है। ज्ञानी-अज्ञानी की इस दूरी के बीच संवाद सम्भव नहीं। इस स्थिति में अध्यापन इकतरफा होता है। अध्यापक बोलता है और विद्यार्थी मात्र सुनता है। यहां संवाद या प्रश्नोत्तर का सर्वथा अभाव है। संवाद के मूल में साम्य भाव अन्तर्निहित रहता है। संवाद शिक्षक-शिक्षार्थी की भांति इकतरफा नहीं होता। संवाद में प्रतिभागियों की सहभागिता रहती है। प्रतिभागी विषय से संबंधित अपने विचार रखते हैं। जिन पर परस्पर विचार-विमर्श होता है। शंका-समाधान की प्रक्रिया चलती है। गुरु-गम्भीर दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने में परस्पर संवाद अपरिहार्य है। दर्शन के लिए शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच अध्यापन की अपेक्षा संवाद श्रेयस्कर है। **सुकरात** ज्ञानी थे, क्योंकि वह अपने 'अज्ञान' के प्रति सजग थे। इसलिए 'जिज्ञासा की जोत' उनके अन्तर्मन में सदैव ही प्रज्वलित रहती थी। सत्य की खोज में उन्हें किसी के साथ, चाहे वह युवा हो अथवा वृद्ध, संवाद करने में संकोच नहीं होता था, क्योंकि वे तथाकथित 'ज्ञानी' होने के बोझ से मुक्त रहते थे। भोर होते ही **सुकरात** नंगे पांव ही घर से निकल पड़ते और हाट-बाजार, कहवाघर जहां कहीं भी उन्हें युवक मिल जाते वहीं प्रेम, सत्य, न्याय, सद्गुण आदि विषयों पर उन्मुक्त चर्चा करने लग जाते। पहले दूसरों के मत को ध्यान से सुनते, फिर पूरी ईमानदारी से अपनी जिज्ञासा रखते और अन्त में अपने विचार को प्रस्तुत करते।'ज्ञानी शिक्षक' शिक्षार्थी के प्रश्न सुनना पसन्द नहीं करते। उन्हें तो केवल निर्बाध सुनाने में रस आता है। यही नहीं यह तथाकथित 'ज्ञानी शिक्षक' जितना जानते हैं, उसी को परिपूर्ण मानते हैं। अत: वह आगे अध्ययन को अनिवार्य नहीं समझते।

सुकरात को आदर्श शिक्षक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। दर्शन का स्वभाव अन्य विषयों से भिन्न है। दर्शन का अध्यापक बन कर अध्यापन सही ढंग से नहीं किया जा सकता। अध्यापकपने में ज्ञान का अहंकार रहता है। यह अहंकार दर्शन की गूढ़ गुत्थियों को सुलझाने में बाधक होता है। यही अध्यापकपना शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच ज्ञानी-अज्ञानी की गहरी खाई बना देता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि **स्वाध्याय और प्रवचन में प्रमाद न करें *(स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्-१.११.१)*** गुरु के लिए यह निर्देश है कि प्रवचन अर्थात् अध्यापन के साथ-साथ स्वाध्याय भी निरन्तर चलता रहे, इसमें प्रमाद कदापि न हो। स्वाध्याय में ग्रंथों के अध्ययन के साथ चिन्तन और मनन भी समवेत है। दर्शन की किसी गूढ समस्या पर निरन्तर चिन्तन और मनन करने से अन्तर्बोध स्फुरित होने लगते हैं। ये अन्तर्बोध दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होते हैं। अन्तर्बोध के गर्भ से न केवल दार्शनिक सिद्धान्तों की नूतन व्याख्याएं जन्म लेती हैं। अपितु नये-नये सिद्धान्त भी स्फुटित होते हैं। स्वाध्याय (अध्ययन, चिन्तन और मनन) और संवाद दर्शनशास्त्र की शिक्षण-पद्धति के अपरिहार्य अंग हैं। संवाद में गुरु-शिष्य दोनों समान धरातल पर रहते हैं, दोनों जिज्ञासु बने रहते हैं और दोनों ही सत्यान्वेषण में साथ-साथ संलग्न रहते हैं, संवाद-पद्धति में गुरु के भी प्रतिभावान शिष्य से ज्ञान ग्रहण करने की संभावना बराबर बनी रहती है। इस संदर्भ में **तैत्तिरीय उपनिषद्** में उल्लेखित गुरु-शिष्य की यह साझी प्रार्थना दृष्टव्य है-'**हम दोनों की परमात्मा साथ-साथ रक्षा करे, हम दोनों साथ-साथ भोजन करें। हम दोनों साथ-साथ अपने बल की वृद्धि करें।**

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

तै.उप.२.१

दर्शन के अध्यापक अध्येता का यह साम्य पारस्परिक संवाद में ही सम्भव है। यह संवाद ही दर्शन के शिक्षण की आत्मा है। संवाद-पद्धति को दाईगिरी कहा जा सकता है। दाई जैसे बच्चा जनने में जच्चा की सहायता करती है ठीक वैसे ही संवाद-पद्धति नये-नये विचारों की अभिव्यक्ति में सहायक होती है।

उपनिषद् भारतीय दर्शन के उद्गम हैं। उपनिषदों में दार्शनिक सत्यान्वेषण संवाद रूप में ही हुआ है। वहां ये संवाद गुरु-शिष्य के बीच मनीषी ऋषियों के मध्य, विद्वान ऋषि और विदुषी महिलाओं और ऋषि और जिज्ञासु राजाओं के बीच अत्यन्त गम्भीर विषयों पर उन्मुक्त वातावरण में परम सत्य के रहस्य को उद्घाटित करने के उद्देश्य से हुए हैं। **आरुणि-उद्दालक** और **श्वेतकेतु** के बीच हुए संवाद में अनेक दृष्टान्तों को प्रस्तुत कर **'तत्वमसि'** के रहस्य को उद्घाटित किया गया है, तो **याज्ञवल्क्य** और **मैत्रेयी** संवाद में आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। परन्तु इन सब संवादों में **राजा जनक** की सभा में **याज्ञवल्क्य** और अन्य विद्वान ऋषियों के बीच हुआ संवाद हमें **सुकरात** की याद दिलाता है। यों तो **याज्ञवल्क्य सुकरात** के पूर्ववर्ती रहे हैं। यहां **सुकरात** से साम्य बतलाने का मन्तव्य यही है कि इस महत्त्वपूर्ण संवाद में **याज्ञवल्क्य अश्वल, आर्तभाग, भुज्यु, उषस्त, चाक्रायण** जैसे उद्भट विद्वानों और **गार्गी** जैसी विदुषी को अपनी सशक्त व सटीक युक्तियों और अन्तर्बोध से निरुत्तर करने के बाद परमसत् के बारे में अपना मत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उपनिषद् काल के दार्शनिक संवादों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि इनमें ऋषियों के साथ-साथ विदुषी महिलाओं ने भी बढ़ चढ़ कर भाग लिया। एथेन्स के संवादों में यह वैशिष्ट्य देखने को नहीं मिलता।

दर्शनशास्त्र का अध्यापक यदि अध्येता बना रहे और स्वाध्याय में सतत संलग्न रहता हुआ दार्शनिक समस्याओं पर चिन्तन-मनन करता रहे तो सहज रूप से अन्तर्बोध होने लगते हैं। ये अन्तर्बोध इन समस्याओं को समझने, सुलझाने और इनकी नूतन व्याख्या करने में सहायक होते। अन्तर्बोध आकाश में चमकने वाली बिजली की भांति अन्तश्चेतना कि वह स्फुरणा होती है जिसमें जटिल दार्शनिक समस्याओं का हल अनायास और अकस्मात प्रकाशित हो जाता है। अन्तश्चेतना की यह स्फुरणा (अन्तर्बोध) दार्शनिकों को ही नहीं अपितु गहन चिन्तन करने वाले वैज्ञानिकों और साहित्यकारों, विशेष रूप से कवियों को भी होती है।

ॐ सह नाववतु।
सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु
मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

तै.उप.२.१

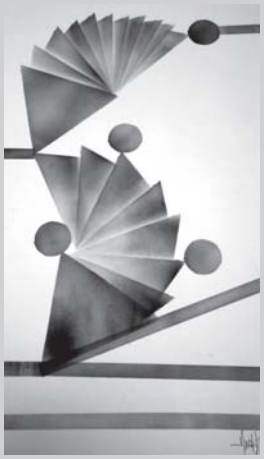

ऐसे ही एक अन्तर्बोध से मेरे मन में अपरिग्रह की एक नयी व्याख्या उद्घाटित हुई। एक बार अपरिग्रह को लेकर मन में कई दिन तक चिन्तन-मनन चलता रहा। प्रायः अपरिग्रह का तात्पर्य स्थूल धन-सम्पदा और जीवन में उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक संग्रह न करने से लिया जाता है। परिग्रह लोभवृत्ति है, विषयों के प्रति आसक्ति (मूर्च्छा) है, जो हमें अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रहवृत्ति और अपव्यय की ओर प्रेरित करती है। इस समस्या पर निरन्तर कई दिन तक विचार-मंथन करने पर अकस्मात् एक दिन अन्तर्बोध की स्फुरणा हुई कि अपरिग्रहण स्थूल विषयों पर ही क्यों, हमारे शब्दों और उनसे भी सूक्ष्म विचारों पर भी तो घटित हो सकता है। लेखन और वक्तव्य दोनों में उतने ही शब्दों का प्रयोग करें जो सार्थक एवं सटीक हों एवं जो हम कहना चाहते हैं, उसके लिए पर्याप्त हो। शब्दों का यह अपरिग्रह समय की बचत करके श्रोता और पाठक दोनों पर समय की बचत करके बड़ा उपकार करता है।

इसी प्रकार विचारों को भी अपरिग्रह के अधीन किया जा सकता है। खाली समय में किए जाने वाले निरुद्देश्य और अनर्गल विचारों पर अपरिग्रह का अंकुश लगाया जा सकता है। विचारों के अपरिग्रह का सतत अभ्यास करने से नकारात्मक सोच पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। कई बार व्यक्ति यह अनावश्यक कुविचार करता रहता है कि प्रतिद्वन्द्वी उसका कहीं कोई अहित न कर दे। इस काल्पनिक अहित से बचने के लिए वह अपने विरोधी के अहित की योजना बनाने लगता है। सूक्ष्म अपरिग्रह इन सब

प्रकार के नकारात्मक और अनावश्यक विचारों को नियंत्रित करता है। इस नवीन व्याख्या की स्फुरणा होने से अपरिग्रह का स्वरूप इतना व्यापक हो जाता है कि यह अकेला अपने में नैतिक आचरण की समग्रता को समेट लेता है। ऐसे अनेक अन्तर्बोध दर्शन के उन शिक्षकों को होते रहते हैं, जो दार्शनिक समस्याओं पर निरन्तर अध्ययन, चिन्तन और मनन करते रहते हैं।

दर्शनशास्त्र ऐसा विषय नहीं कि जिसके एक बार नोट्स बना लिये जायें और फिर उन्हीं नोट्स को कक्षा में विद्यार्थियों को साल-दर-साल लिखवाते रहें। यह दर्शन के शिक्षण में सर्वथा अनुपयुक्त है। अमूर्त और गूढ़ दार्शनिक सम्प्रत्ययों को समझने के लिए विशद व्याख्या और सटीक विश्लेषण की अपेक्षा रहती है। दर्शन के सूत्र ग्रंथों और मूल रचनाओं पर विद्वान मनीषियों के भाष्य और टीकाओं का उद्देश्य जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों की विस्तार से व्याख्या करके उनके अर्थ को सुस्पष्ट और सुगम करना ही है। दर्शन के शिक्षक को भी व्याख्या और विश्लेषण की ऐसी योग्यता अर्जित करनी होती है जिससे गूढ़ और जटिल सम्प्रत्ययों के सही अर्थ को सुस्पष्ट कर सके।

एक दृष्टान्त देना अप्रासंगिक न होगा। **शंकराचार्य** का यह कथन कि **'जगत मिथ्या है'** बहुत गहरा अर्थ रखता है। यह कह देने मात्र से कि 'जगत व्यावहारिक सत्य है और जब पारमार्थिक सत्य अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो जाता है तो जगत का बोध हो जाता है'। जगत का मिथ्यात्व समझ में नहीं आता। कई प्रश्न अनुत्तरित रह जाते है ? यथा क्या ब्रह्म ज्ञानी के लिए जगत का सर्वथा लोप हो जाता है ? क्या उसे सर्वत्र एक ब्रह्म के ही दर्शन होने लगते हैं ? इसका सटीक विश्लेषण करने पर हम यह समझ पाते हैं कि पारमार्थिक सत्य का ज्ञान होने पर भी जगत तो वैसा ही रहता है जैसा पहले था, परन्तु जगत के प्रति

शंकराचार्य का यह कथन कि 'जगत मिथ्या है' बहुत गहरा अर्थ रखता है। यह कह देने मात्र से कि 'जगत व्यावहारिक सत्य है और जब पारमार्थिक सत्य अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो जाता है तो जगत का बोध हो जाता है'। जगत का मिथ्यात्व समझ में नहीं आता। कई प्रश्न अनुत्तरित रह जाते है ? यथा क्या ब्रह्म ज्ञानी के लिए जगत का सर्वथा लोप हो जाता है ? क्या उसे सर्वत्र एक ब्रह्म के ही दर्शन होने लगते हैं ?

ब्रह्मज्ञानी का यह दृष्टिकोण सर्वथा बदल जाता है। ज्ञान होने से पहले व्यक्ति की दृष्टि अनेकात्मक होती है। व्यक्ति का सोच और उसके निर्णय वस्तुओं की अनेकता, और उनसे सम्बद्ध उसकी पसन्द-नापसन्द, रुचि-अरुचि, प्रेम और घृणा आदि से प्रेरित होते हैं और तज्जन्य सुख-दुख से वह प्रभावित होता है। ज्ञानोदय होने पर ज्ञानी की दृष्टि एकात्मक हो जाती है। उस ज्ञानी के लिए वस्तुओं, व्यक्तियों और सम्बन्धों की विविधता गौण और इन सबके मूल में व्याप्त मूल तत्व अन्तश्चेतना की एकता प्रमुख हो जाती है। वह शारीरिक कष्ट और मानसिक सुख-दुःख में विचलित और उत्तेजित नहीं होता। प्रत्येक परिस्थिति में वह शान्त और सम रहता है। सोने के आभूषणों में रुचि रखने वाली महिला के लिए आभूषणों का आकार-प्रकार और नवीनतम डिजाइन कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसके लिए वह सोने में थोड़ी बहुत खोट से भी समझौता कर सकती है। यह अनेकात्मक दृष्टि है। आभूषण उसे सुख देते हैं। उन्हीं आभूषणों को यदि वह बेचने के लिए किसी सुनार के पास जाती है तो उस सुनार के लिए आभूषणों के मूल तत्व सोने की शुद्धता अर्थवान है। यह एकात्मक दृष्टि है। सुनार के लिए आभूषणों की अनेक रूपात्मकता मिथ्या अर्थात् सारहीन है तथा मूल तत्व सोने की एकता सत्य है। इस प्रकार के विश्लेषण की दार्शनिक समस्याओं को समझाने की अपेक्षा रहती है।

भारतीय परम्परा में खण्डन-मण्डन की एक स्वस्थ परम्परा रही है। प्राय: सभी दार्शनिक सम्प्रदाय अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों के मुख्य सिद्धान्तों को अपने ग्रंथों में पूर्वपक्ष के रूप में जस का तस प्रस्तुत करते हैं। फिर उनका युक्तिपूर्वक खंडन करते हैं। तत्पश्चात् अपने मत का मण्डन अर्थात निरूपण करते हैं। इस पद्धति से दार्शनिक सिद्धान्तों का पर्याप्त विकास हुआ है। छठी और सातवीं सदी में **बौद्ध** तार्किकों ने तो भारतीय दर्शन की विचारधारा को नया आयाम दिया। यही नहीं किसी एक सम्प्रदाय के ग्रंथों में अन्यान्य सम्प्रदायों के सिद्धान्त उपलब्ध हो जाते हैं। **चार्वाक दर्शन** का अब अपना कोई मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, तथापि इसके मूल सिद्धान्त **जैन, मीमांसा, वेदान्त** आदि के ग्रंथों में पूर्वपक्ष के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। दर्शनशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन में भी यह परम्परा सर्वथा उपयुक्त और प्रभावशाली बन सकती है। दर्शन का स्वरूप चिन्तन परक है। कोई भी दर्शन इतना परिपूर्ण नहीं है कि उसकी आलोचना न की जा सके। किन्तु यदि कोई अध्यापक किसी दर्शन का पक्ष

रखे बिना प्रारम्भ में ही उसकी आलोचना करने लग जाए तो यह छात्रों और उस दर्शन दोनों के साथ अन्याय ही होगा। अत: सर्वप्रथम जिस दर्शन का अध्यापन किया जा रहा है, उसके सिद्धान्तों को पूर्ण पक्ष के रूप में ठीक उसी तरह छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए जिस रूप में उस दर्शन के प्रवर्तकों ने उसे प्रस्तुत किया है। **जैन दर्शन** अथवा **बौद्ध दर्शन** की चर्चा करते समय अध्यापक को एक निष्ठावान जैनी या बौद्ध की भांति इन दर्शनों के सिद्धान्तों को पूर्वाग्रह मुक्त होकर समझाना चाहिए। तत्पश्चात उस दर्शन की समालोचना करनी चाहिए जिसमें न केवल उसकी दुर्बलताएं ही बतलाई जाए अपितु उसके सबल पक्ष और वैशिष्ट्य की भी सराहना की जाये। अंत में अपनी ओर से समीचीन सुझाव भी प्रस्तुत किये जायें। पूर्वपक्ष खण्डन और मण्डन की पद्धति से भारतीय तर्कशास्त्र (न्याय-शास्त्र) वेदान्त, जैन, बौद्ध आदि दर्शन बहुत समृद्ध हुए हैं। दर्शन के शिक्षण में इस पद्धति को अपनाने से छात्रों में मौलिक चिन्तन की क्षमता विकसित होती है।

दर्शन सैद्धान्तिक होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी है। भारतीय दर्शन तो स्वरूपत: व्यावहारिक ही है। दर्शन जीने का विषय है यह वस्तुत: जीया जाता है। रुचि और निष्ठापूर्वक जब दर्शन का अध्ययन अध्यापन किया जाता है तो यह स्वत: जीवन में उतरने लगता है। दर्शन आत्मान्वेषण है। यह स्वयं को जानने की सतत खोज है। **सार्त्र** का **अस्तित्ववाद** हो अथवा **उपनिषदों** का **आत्मवाद, हीगेल** का **निरपेक्षवाद** हो अथवा **जैनों** का **सापेक्षवाद** सभी दर्शन (चार्वाक के ऐन्द्रिक सुखवाद को छोड़कर) और लगभग सभी दार्शनिक इस बात पर एकमत हैं कि मनुष्य पंचमहाभूतों के पुंज से इतर और उच्चतर है। **दर्शन का मूल उद्देश्य उस उच्चतर मानव की खोज है जिसका अन्वेषण अलग-अलग दर्शन अपने-अपने ढंग से करते हैं।** ऐषणाओं की पूर्ति हमें सुख तो देती है पर संतुष्टि नहीं। सुख पा लेने से सुख चाहने की भूख और बढ़ती है। संतुष्टि तृप्ति है। **कठोपनिषद्** में **यमाचार्य** जिज्ञासु **नचिकेता** को **प्रेयस** और **श्रेयस** का भेद समझाते हैं। **प्रेयस** वह है जो हमें प्रिय है, हमारी पसन्द है। जो हमें पसन्द या प्रिय है वह श्रेयस्कर अथवा शुभ भी हो यह अनिवार्य नहीं है। **श्रेयस** वह है **जो श्रेष्ठ है,** शुभ है, कल्याणकारी है। प्रेयस का सम्बन्ध शरीर, मन और इन्द्रिय से है। श्रेयस का सम्बन्ध विवेक और चेतना से है। प्रेयस अस्थायी सुख देता है और श्रेयस से दीर्घकालिक संतुष्टि प्राप्त होती है। दर्शन इसी श्रेयस की सतत खोज है। इसी श्रेयस की प्राप्ति के लिए **नचिकेता** ने धन-धान्य की अथाह सम्पत्ति को ठुकरा दिया था जो उसे **यमाचार्य** से आत्मज्ञान के एवज में मिलने वाली थी। **सुकरात** यदि दर्शन का आदर्श अध्यापक है तो **नचिकेता** एक श्रेष्ठ शिष्य है। दर्शन के अध्ययन-अध्यापन के ये दोनों श्रेष्ठ आदर्श है। **सुकरात** व **विवेकानन्द** जैसे चिन्तकों ने युवाओं के साथ दार्शनिक चिन्तन का विचार-विमर्श ही नहीं किया अपितु चिन्तन को अपने जीवन में जीया भी। **सुकरात** सत्यान्वेषी के साथ-साथ सत्यजीवी भी था। **पेलोपोनेशियन** युद्ध में **एथेन्स** की हार के बाद वहां का प्रजातंत्र भी हार गया। **सुकरात** जैसे सत्य-प्रचारक शिक्षक के लिए कोई स्थान नहीं रहा। उस पर आरोप लगाया गया कि वह न केवल **एथेन्स** के सर्वमान्य देवताओं को अस्वीकार करता है वरन् युवाओं की मति भी भ्रष्ट कर रहा है। इस अपराध पर उसे मृत्युदण्ड की सजा दी गयी। **सुकरात** के शिष्यों ने उसे जेल से भगाने के लिए योजना बनायी और उससे निवेदन किया कि उसे ऐसे अपराध के लिए दण्ड दिया जा रहा है जो उसने किया ही नहीं। अत: उसको अन्यायपूर्वक दिये गये दण्ड से बच निकलना चाहिए। इस पर **सुकरात** ने अपने शिष्यों को फटकार लगाते हुए कहा कि जीवन पर्यन्त उसने सत्य को जीया है और अब मृत्यु के भय से वह सत्य से मुंह नहीं मोड़ सकता। **एथेन्स** का नागरिक होने के नाते **एथेन्स** के नियमों का पालन करना उसका धर्म है। **सुकरात** द्वारा अपने शिष्यों को मृत्यु पूर्व कहे गए शब्द बहुत मार्मिक और सारगर्भित है- **मृत्यु शरीर की होती है आत्मा की नहीं। मृत्यु एक गहरी नींद है, एक मधुर और अनन्त विस्मरण जिसमें न कोई अन्याय है, न निराशा, न दु:ख, न शोक। यह तो स्वर्ग या ईश्वर तक जाने का द्वार है। मित्रो। वहां किसी को अपने मत के लिए**

श्रेयस की प्राप्ति के लिए नचिकेता ने धन-धान्य की अथाह सम्पत्ति को ठुकरा दिया था जो उसे यमाचार्य से आत्मज्ञान के एवज में मिलने वाली थी। सुकरात यदि दर्शन का आदर्श अध्यापक है तो नचिकेता एक श्रेष्ठ शिष्य है। दर्शन के अध्ययन-अध्यापन के ये दोनों श्रेष्ठ आदर्श है।

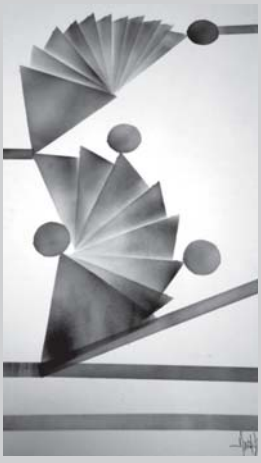

मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता। इसलिए प्रसन्न रहें और जब मुझे दफनाया जाए तो बिल्कुल रोंयें नहीं क्योंकि जो दफनाया जायेगा वह शरीर होगा मेरी आत्मा नहीं। और अन्त में जेलर द्वारा दिए गए विष के प्याले को पीकर शान्ति से फर्श पर सो जाता है चिर निद्रा में। सच है, सत्य का उपासक साहसी होता है, कायर नहीं।

दर्शन वस्तुत: अपने आप को जानने की जीवन पर्यन्त चलने वाली शिक्षा है। दर्शन का तात्पर्य ही देखना है। उपनिषदों का उद्घोष है 'आत्मा को देखो' (आत्मा वा अरे द्रष्टव्य) यहां देखने का अर्थ जानना ही है। आत्मा क्या है ? आत्म ज्ञान क्या है? यह कैसे और किसे होता है ? यह सब विवाद का विषय हो सकता है। परन्तु आत्म ज्ञान को आदर्श मान कर निरन्तर आत्म निरीक्षण करते रहने से व्यक्ति मानव चेतना के उत्तरोत्तर विकासमान उच्च से उच्चतर सोपानों को अवश्य प्राप्त करता है, यह निर्विवाद है। हम प्राय: आत्म-प्रवञ्चना में जीते हैं। हम यथार्थ में होते कुछ और हैं तथा दिखाई देते हैं कुछ और। अपने दोषों को पहचानने और स्वीकार करने की अपेक्षा उनके औचित्य को सिद्ध करने में सारी शक्ति लगा देते हैं। व्यक्ति यदि असत्य भाषण को दोष न मान कर सफलता का सूत्र मानता है तो इसे दूर करने की अपेक्षा ऐसा तरीका सीखना पसन्द करेगा जिससे वह अधिक कुशलता से झूठ बोल सके। आत्म-दर्शन अपने दोष को दोष रूप में और गुण को गुण रूप में स्वीकार करना है। दोष या दुर्गुण समाज में निन्दनीय और अस्वीकार्य होते हैं। इसलिए अपने दुर्गुणों को स्वीकार करने में साहस की आवश्यकता होती है। दुर्गुण को व्यक्तित्व की कमी के रूप में स्वीकार करने पर उसे दूर करने की गुंजाइश बराबर बनी रहती है। अत: आत्मदर्शन हमें आंतरिक विकास की ओर अग्रसर करता है।

आत्म-दर्शन हमें हमारी दुर्बलताओं के प्रति सचेत करता है। दुर्बलताओं को स्वीकार करने का साहस देकर उन्हें दूर करने की संभावनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। यह आत्म-दर्शन ही दर्शनशास्त्र का आत्म-शिक्षण है। आत्म-द्रष्टा स्वयं ही अपना गुरु और स्वयं ही शिष्य है। संवाद की परिपूर्णता आत्म-दर्शन में होती है जिसे हम आत्म-संवाद भी कह सकते हैं।

जीवन दर्शन का सच्चा शिक्षक हमारा परिवेश है। यदि हम विपरीत और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सत्य का दामन थामे रह सकते हैं, और जब अनैतिक होने की पूरी-पूरी सुविधा और सुअवसर उपस्थित हो तब भी नैतिक बने रहते हैं, तो हम **युधिष्ठिर** की भांति दर्शन के एक सच्चे विद्यार्थी हैं। ठिठुराती सर्दियों की सर्द रातों में जब नरम-गरम रजाइयों में सुख की नींद सो रहे होते हैं, तब यदि फुटपाथ या रेल्वे लाइन के पास फटी और आधी-अधूरी कम्बल में तन ढांपने का असफल प्रयास कर रहे असहाय लोगों की याद आती है तो समझिए कि 'मानवता का पाठ' हमें अच्छी तरह से याद हो गया है। **महायान** का **बोधिसत्त्व** तो निर्वाण के द्वार पर पहुंच कर भी लोक कल्याण के लिए बार-बार संसार की ओर लौटता है। जीवन की सार्थकता सफलता प्राप्त करने में नहीं अपितु जीवन को सफल बनाने में है। हमारे जीवन के केवल और केवल वे ही क्षण सार्थक हैं जिन क्षणों में हम परहित साधने में साधन बनते हैं। जिस क्षण में हमारे मन में किसी व्यक्ति के प्रति अहित का विचार आता है तो उससे उस व्यक्ति का तो कुछ बिगड़ता नहीं, किन्तु हमारा अहित तो तत्क्षण हो जाता है। कुविचार हमारे व्यक्तित्व को दुर्बल बनाते हैं। कुविचारों वाला व्यक्ति शरीर से कितना ही ताकतवर क्यों न हो मन से वह बहुत दुर्बल और कायर होता है।

आत्म-दर्शन हमें हमारी दुर्बलताओं के प्रति सचेत करता है। दुर्बलताओं को स्वीकार करने का साहस देकर उन्हें दूर करने की संभावनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। यह आत्म-दर्शन ही दर्शनशास्त्र का आत्म-शिक्षण है। आत्म-द्रष्टा स्वयं ही अपना गुरु और स्वयं ही शिष्य है। संवाद की परिपूर्णता आत्म-दर्शन में होती है जिसे हम आत्म-संवाद भी कह सकते हैं। दर्शनशास्त्र सार्थक और श्रेयस्कर विषय है, क्योंकि यह हमें आत्म-संवादी बनाता है।❑

सेवा निवृत्त प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
दर्शनशास्त्र, गोदावरी वल्लभ निवास,
मकराणा मौहल्ला, जोधपुर-३४२००२
मो. नं.-९१६६२११२०५
ई-मेल - shivji_joshi@yahoo.com

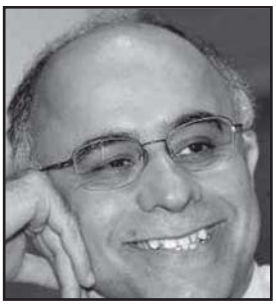

गो, किस द वर्ल्ड

❑

सुब्रतो बागची

सुप्रसिद्ध रूसी लेखक रसूल हमजातोव ने अपनी विश्व विख्यात पुस्तक मेरा दागिस्तान में उस टिमटिमाते दीपक का जिक्र किया है जो उनकी मां ने घर की एक खिड़की में तब रख दिया था जब रसूल दुनिया की यात्रा पर निकले थे। रसूल ने लिखा है कि घर की खिड़की में रखा हुआ मां का जलाया हुआ वह चिराग पूरी दुनिया में उनके रास्ते को रोशन करता रहा। ऐसे ही अपनी मां के प्रेरक आदेश को याद कर रहे हैं सुब्रतो बागची। सुब्रतो भारत के पहले कम्प्यूटर कन्सलटेंट रहे हैं और पूरे विश्व में उनके योगदान की चर्चा रही है। सुब्रतो ने यहां प्रस्तुत व्याख्यान बंगलौर के एक शिक्षा संस्थान के एम.बी.ए. के छात्रों के समक्ष दिया था। यह व्याख्यान जस का तस अंग्रेजी में नेट पर भी उपलब्ध है और इसका अनुवाद किया है हिन्दी के लेखक-रजीनकांत शर्मा ने। ❑ सं.

एक अस्थाई शासकीय सेवक के पांच बेटों में से मैं सबसे छोटा बेटा था। मेरी स्मृति में मेरे पिता की छवि उस समय की है जब वे **कोरापुर, उड़ीसा** में **जिला रोजगार अधिकारी** थे। यह इतना पिछड़ा इलाका था और है जिसकी कल्पना करना भी कठिन है। यहां बिजली नहीं थी। स्कूल नहीं थे और पीने का पानी नहीं था, परिणाम स्वरूप मैं ८ वर्ष की उम्र तक स्कूल नहीं जा सका। मुझे स्कूली शिक्षा घर पर ही मिली।

पिताजी का प्रतिवर्ष स्थानांतरण होता रहता था। परिवार के पास इतना ही सामान था कि वो जीप के पीछे आराम से समा जाता था और परिवार बिना परेशानी के एक स्थान से दूसरे स्थान जा सकता था। मां सबको चलने के लिए तैयार करती। मां को मेरी विधवा नानी ने पाला था जो पूर्व बंगाल से शरणार्थी के रूप में आयीं थीं । मेरे पिता से विवाह के समय वे मैट्रिक तक पढ़ी थीं। मेरे माता-पिता ने मेरे जीवन मूल्यों की आधारशिला रखी। उन्होंने मुझे वो संस्कार दिए जिनकी बदौलत मैं आज आपके सामने हूं। और सफलता को सच्चे अर्थों में परिभाषित करने में समर्थ हूं।

एक जिला रोजगार अधिकारी के रूप में मेरे पिता को एक जीप दी गयी थी। उनके ऑफिस में कोई गैरेज नहीं होने के कारण जीप को हमारे घर में पार्क किया जाता था। उन्होंने हमें समझाया जीप एक महंगा साधन है। यह शासन ने उनको उपलब्ध कराया है। यह हमारी जीप नहीं वरन् शासन की है। उन्होंने सुनिश्चित किया कि जीप का उपयोग केवल सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा करने पर ही किया जावे। सामान्य दिनों में वे पैदल ही ऑफिस जाते थे और हम तभी जीप में बैठ सकते थे, जब स्थानांतरण पर बाहर जाना हो। शासकीय चीजों का उपयोग किस प्रकार किया जाये उसका पहला पाठ था। ऐसा

पाठ जो आज के कॉरपोरेट मैनेजर कठिनाई से सीख सकेंगे। कुछ तो शायद कभी नहीं। जीप के चालक को परिवार के अन्य सदस्यों की तरह वैसा ही सम्मान दिया जाता था जैसा पिताजी के ऑफिस के अन्य सदस्यों को दिया जाता था। जैसा छोटे बच्चों को सिखाया जाता है वैसे ही हमें भी सिखाया गया कि घर पर हो या बाहर ड्राइवर को नाम से न पुकारा जाये। जब मैं जवान हो गया और मैंने अपनी कार खरीदी और एक ड्राइवर रखा जिसका नाम राजू था। मैंने मेरी दोनों बेटियों को राजू अंकल कहना सिखाया। मेरी बेटियां राजू अंकल कहती बड़ी हुई। जो उनकी वय के दूसरे बच्चों से भिन्न थी। अन्य बच्चे मेरा ड्राइवर कहकर बुलाते थे। जब मैं स्कूल कॉलेज जाने वाले बच्चों को ऐसा कहते सुनता हूं तो शर्म से गड़ जाता हूं।

व्यक्तिश: मेरे लिए यह महत्वपूर्ण पाठ था। आपको छोटे लोगों को सम्मान देना आना चाहिए बजाये बड़े लोगों के। यह अधिक महत्वपूर्ण है कि आप अपने अधीनस्थ का अधिक सम्मान करें बजाए वरिष्ठों के।

हमारा दिन पारिवारिक शोर-शराबे के बीच मां के चूल्हे के आस-पास शुरु होता। चूल्हा याने एक मिट्टी का बना आग जलाने का स्थान, जिसे मां हर नयी जगह बनाती थीं। इस पर हमारा भोजन बनता था। न तो गैस थी न इलेक्ट्रिक स्टोव, सुबह की शुरुआत चाय से होती। चाय के बाद पिताजी हमसे स्टेट्समेन का संपादकीय पढ़ने को कहते जो हमारे यहां एक दिन बाद आता था। हम जो कुछ पढ़ते वो सब समझ नहीं पाते थे। लेकिन इस वाचन का अर्थ यह भी था कि दुनिया **कोरापुट** जिले से बाहर भी अस्तित्व रखती है और जो अंग्रेजी में बोल रहा हूं व उड़िया माध्यम से पढ़ाई करने के बावजूद जो अस्तित्व रखती है वह बचपन के उस प्रात:कालीन वाचन का ही प्रतिफल है। जोर जोर से अखबार पढ़ने के बाद हमसे कहा जाता कि अखबार की व्यवस्थित करके रखें। पिताजी ने हमें साधारण किन्तु महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाया-**वो कहते अपना अखबार और टायलेट वैसा रखो जैसा तुम उसे रखे हुए देखना चाहते हो।** इसका स्पष्ट आशय यह है कि दूसरे भी उसका उपयोग करना चाहेंगे। व्यवहार इस मामूली विचार से शुरु और खत्म होता है।

बच्चे होने के कारण हम प्राय: अखबार के विज्ञापनों को देखकर लालायित होते थे। जो रेडियो ट्रांजिस्टर के बारे में होते। जो हमारे पास नहीं थे। हम देखते कि वे लोगों के पास हैं और उनमें हर कभी बुश, मर्फी, फिलिप्स के विज्ञापन होते। हम पिता से कहते-**हमारे यहां कब रेडियो आयेगा। हर बार वो जवाब देते हमें रेडियो की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरे पास पांच रेडियो हैं-मेरे पांच बेटे।** हमारे पास खुद का घर नहीं था। हम कभी कभार पूछते हमारा अपना घर कब होगा ? दूसरों की तरह हम अपने घर में कब रहेंगे ? वे उसी उत्तर को दोहरते मेरे पास पांच घर हैं मेरे पांच बेटे। उनके इस जवाब से हम उस समय खुश नहीं होते थे। लेकिन आगे चलकर हमने जाना कि किसी व्यक्ति की सफलता भौतिक साधानों से नहीं मापी जा सकती।

कल्पना शक्ति सब कुछ है। यदि आप कल्पना कर सकते हैं तो भविष्य निर्माण कर सकते हैं। यदि आप भविष्य का निर्माण कर सकते हैं तो दूसरे उसमें रह सकते हैं। सफलता का सार, उसकी खुशबू इसी में है।

शासकीय आवासों में सामान्य तौर पर फेन्स नहीं होती। मेरी मां ने और मैंने कुछ टहनियां इकट्ठा करके एक फेन्स तैयार की। दोपहर के भोजन के बाद मां कभी सोती नहीं थी। वो बर्तन साफ करती फिर हम क्वार्टर के आसपास की पथरीली दीमक भरी मिट्टी खोदते। उसमें हमने फूल के पौधे लगाए। एक बार तो दीमक ने सब चट कर डाले। फिर मां ने चूल्हे से थोड़ी राख लेकर मिट्टी में मिलाई और पौधों को एक बार फिर रोंपा। अबकी बार वे खिले। इसी समय मेरे पिता का स्थानांतरण आदेश आ गया। कुछ पड़ौसियों ने मां से कहा कि वह एक सरकारी मकान को खूबसूरत बनाने के लिए क्यों कष्ट उठा रही है जबकि उनके परिवार को वहां रहना नहीं है और कोई अन्य इसका आनन्द उठायेगा। मेरी मां ने कहा उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह इन पौधों को खिलते हुए नहीं देख सकेंगी। मां ने आगे कहा मुझे बंजर जमीन में फूल खिलाना आता है। यदि मुझे ऐसी जगह एक बार फिर मिलती है तो मैं उसे इस जगह से भी ज्यादा सुंदर बनाने की कोशिश करूंगी। यह मेरे लिए सफलता का पहला सबक था। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आपने क्या पा लिया, महत्वपूर्ण यह है कि आपने क्या छोड़ा?

जब मैं छोटा ही था मां की आंखों में मोतियाबिन्द के प्रारंभिक लक्षण दिखने लगे। तभी मेरे बड़े भाई को भुवनेश्वर विश्व विद्यालय में नौकरी मिल गयी और उनको लोक सेवा आयोग की तैयारी भी करनी थी।

यह तय किया गया कि मां भी उनके साथ जायेगी। ताकि भोजन इत्यादि की व्यवस्था ठीक से हो। उनके साथ बंधे रहने के कारण मुझे भी जाना पड़ा। यह १९६५ की बात है। मैंने पहली बार बिजली जलते देखी और नलों से पानी आते देखा। इसी समय भारत पाकिस्तान का युद्ध चल रहा था। मेरी मां को पढ़ने में दिक्कत होती थी और बंगाली होने के कारण वह उड़िया लिपि नहीं पढ़ सकती थी। दैनन्दिन के दूसरे कामों के साथ मुझे मां को शुरु से आखिर तक अखबार पढ़ कर सुनाना पड़ता था। इस बात ने मेरे मन में दुनिया से जुड़ाव की भावना पैदा की। मैं बहुत सारी बातों में रुचि लेने लगा। युद्ध की खबरें पढ़कर मुझे लगता मैं भी युद्ध कर रहा हूं। मैं और मां युद्ध की बातें करते और सम्पूर्ण विश्व से जुड़ते। हम एक वास्तविक संसार का हिस्सा बन गये। आज भी मैं अपनी सफलता को उन दिनों के वृहत्तर विश्व से मिलाकर देखता हूं।

कुल मिलाकर भारत युद्ध में शामिल हुआ। दोनों फ्रन्ट पर (तब का पूर्व पाकिस्तान तथा पश्चिमी पाकिस्तान) लाल बहादुर शास्त्री जो उस समय प्रधानमंत्री थे, ने **जय जवान जय किसान का नारा** दिया। सम्पूर्ण देश में देशभक्ति की भावना जगाकर सम्पूर्ण राष्ट्र को एक कर दिया। मां को अखबार पढ़कर सुनाने के बाद मेरे पास और ऐसा कोई काम नहीं था कि इस छोटी उम्र में देश भक्ति की मुहिम में सक्रिय सहयोग कर सकूं। तो रोजाना अखबार पढ़ने के बाद मैं विश्वविद्यालय के तालाब पर चला जाता जो सारे शहर को पानी देता था। तालाब के पिचिंग पर बैठकर घंटों सोचा करता कि शायद कोई पाकिस्तानी जासूस तालाब के पानी में जहर मिलाने आयेगा और मैं उसे पकड़ लूंगा और दूसरे दिन मेरा नाम अखबारों के प्रथम पृष्ठ पर होगा। मैं दिवास्वप्न देखता। दुर्भाग्य से मेरे लिए

उन्होंने मुझे सिखाया कि सफलता अपने दु:खों से ऊपर उठकर समष्टि को देखना है। चाहे आपकी अपनी स्थिति कितनी ही खराब क्यों न हो। यदि कोई चाहे तो अपने अन्त:करण की पुकार पर अपनी तात्कालिक स्थिति से ऊपर उठ सकता है। सफलता भौतिक सुख साधन इकट्ठा करना नहीं है।

जासूसों ने भुवनेश्वर जैसे सुप्त कस्बे को छोड़ दिया और मैं किसी जासूस को न पकड़ सका। लेकिन इस परिघटना ने मेरी कल्पना के दरवाजे खोल दिये। कल्पना शक्ति सब कुछ है। यदि आप कल्पना कर सकते हैं तो भविष्य निर्माण कर सकते हैं। यदि आप भविष्य का निर्माण कर सकते हैं तो दूसरे उसमें रह सकते हैं। सफलता का सार, उसकी खुशबू इसी में है।

आगे के सालों में मां की आंखें कमजोर होती गईं लेकिन उसने मेरी आंखों से वृहत्तर दुनिया को देखना शुरु किया। ऐसी दृष्टि जिससे मैं लगातार और बड़ी दुनिया को देख रहा था।

कुछ समय बाद मां की आंखों के मोतिया बिन्द का इलाज कराना पड़ा। मुझे याद है आंखों के ऑपरेशन के बाद जब मां घर आयीं तो मुझे देखकर उसने कहा-हे भगवान। मुझे नहीं मालूम था कि तुम इतने सुन्दर हो? उसके इस आल्हादित स्नेह को मैं आज भी भूला नहीं हूं। मां की आंखों के ऑपरेशन के कुछ सप्ताह बाद ही मां की आंखों में कारनेल अल्सर हो गया और वह रातों रात अन्धी हो गयी। यह १९६९ की बात है, वर्ष २००२ में मां का देहांत हुआ। ३२ साल तक अंधेरे में रहने के बावजूद उसने एक बार भी अपने दुर्भाग्य का रोना नहीं रोया। उत्सुकतावश कि अंधी आंखों से क्या देखती होगी ? एक बार मैंने पूछा क्या उसे अंधेरा दिखाई देता है ? उसने कहा नहीं मुझे अंधेरा दिखाई नहीं देता। मुझे केवल उजाला दिखाई देता है जबकि मेरी दोनों आंखें बन्द है। ८० साल की उम्र तक मेरी मां ने योग किया अपना कमरा खुद साफ किया और अपने कपड़े खुद धोए।

मेरे लिए सफलता का अर्थ है आत्म निर्भरता। यह दुनिया देखने के बारे में नहीं है। यह प्रकाश देखने के बारे में है।

इन सारे वर्षों में मैं बड़ा हुआ। मैंने पढ़ाई की और जीवन यात्रा शुरु की। मैंने मेरा जीवन एक क्लर्क के रूप में शुरु किया और डी.सी. एम. ग्रुप का ट्रेनी मैनेजमेंट बना और जीवन प्रवाह ने मुझे आई.टी.उद्योग की धारा में डाल दिया, जब १९८१ में चौथी पीढ़ी के कंप्यूटर भारत में आये। अन्यान्य जगहों पर मेरा जाना हुआ। मैंने असाधरण प्रतिभाओं के साथ काम किया। चुनौतियों को निभाया और लगभग पूरे विश्व की यात्रा की।

१९९२ में जब मैं अमेरिका में था। मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे पिता जो मेरे बड़े भाई के साथ एक सेवानिवृत्त का जीवन जी रहे थे बुरी तरह जल गए थे और दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में उनका इलाज हो रहा था। मैं अमेरिका से दिल्ली आया। वह कुछ दिनों तक गंभीर रूप से बीमार रहे। सिर से पांव तक पट्टियों में लिपटे।

सफदरजंग अस्पताल बेहद गंदी कॉक्रोच से भरी अमानवीय जगह है। काम की अधिकता और साधनों के बीच बर्न्स वार्ड की नर्सें पीड़ित और पीड़क दोनों होती हैं। यह अमानवीयता की हद तक होती है। एक

सुबह जब मैं पिताजी की देखभाल कर रहा था - मैंने देखा कि पिताजी को लगी खून की बोतल खत्म हो चुकी है और डरने लगा कि कहीं उनके शरीर में हवा न चली जाए। मैंने नर्स से कहा कि वो इसे बदल दे। उसने रूखा सा जवाब दिया कि तुम खुद कर लो। मौत के उस नाट्य गृह में मैं भयावह स्थिति में था।

मैं दुखी और निराश था। अंतत: नर्स आयी। मेरे पिताजी ने आंखें खोली और फुसफुसाए-तुम अभी तक घर क्यों नहीं गयी? यहां वह आदमी है जो मृत्यु शैय्या पर पड़ा है। वह अपनी भयावह स्थिति से बेखबर नर्स से पूछ रहा है कि वह अभी तक घर क्यों नहीं गयी। मैं स्तम्भित था। मैंने सीखा कि किसी अन्य व्यक्ति की फिक्र करने की कोई सीमा और स्थिति नहीं है। और बरदाश्त करने की भी कोई सीमा नहीं है। पिताजी का दूसरे दिन देहान्त हो गया।

मेरे पिता उन लोगों में थे जिनके सिद्धान्त ही उनकी सफलता थे। उनकी मितव्ययता, उनकी विश्वबन्धुत्व की भावना और व्यष्टि समावेश भाव। इन सबसे ऊपर उन्होंने मुझे सिखाया कि सफलता अपने दु:खों से ऊपर उठकर समष्टि को देखना है। चाहे आपकी अपनी स्थिति कितनी ही खराब क्यों न हो। यदि कोई चाहे तो अपने अन्त:करण की पुकार पर अपनी तात्कालिक स्थिति से ऊपर उठ सकता है। सफलता भौतिक सुख साधन इकट्ठा करना नहीं है। ट्रांजिस्टर जो वे नहीं खरीद सके और मकान जो वे नहीं बना सके। उनकी विरासत नहीं भी हो सकते थे। उनकी सफलता और विरासत उनके आदर्शों की गतिशीलता है जो उनके छोटेपन, मामूली वेतन पाने वाले शासकीय कर्मचारी की मामूली दुनिया को हिमालयी सर्वोच्चता से गौरवान्वित करती है।

मेरे पिता ब्रिटिश राज के अन्ध भक्त थे। वे पूरी गम्भीरता से इस बात पर शक करते थे कि देश के स्वतंत्र होने पर भारतीय राजनीतिक दल देश को चला पायेंगे। उनके लिए यूनियन जेक का उतरना दुखदायी परिघटना थी। मेरी मां इसके एकदम विपरीत थी। जब **सुभाषचन्द्र बोस** ने कांग्रेस छोड़ दी और पवना 'बंगलादेश' आए (अविभाजित पूर्व बंगाल), तो मेरी मां जो उस समय स्कूल में पढ़ती थी-ने उनको माला पहनाई थी। उसने सूत कातना सीखा और एक ऐसे संगठन में शामिल हुई जो गुप्त रूप से काम करता था। उसने तलवार और चाकू छुरी चलाना भी सीखा।

संयोगवश हमने अपने घर में राजनीतिक विविधता देखी। संसार भर के विभिन्न मुख्य मुद्दों पर उनके दृष्टिकोण अलग अलग थे। हमने उनमें भिन्नता में अभिन्नता की ताकत और विविधता में एकता की खुशबू देखी।

सफलता का अर्थ यह नहीं कि हम अपनी योग्यता को सिद्धान्तों की बलि चढ़ा दें। सफलता का अर्थ है कि हम दृढ़ता पूर्वक अपने विचारों को रखें और संवादहीनता को पोषित न होने दें।

मेरी मां जब ८२ वर्ष की थीं तो उनको लकवा हो गया। वे भुवनेश्वर के सरकारी अस्पताल में भर्ती थी। मैं मां को देखने अमेरिका से आया। जहां मैं दूसरी पारी कर रहा था। मां के साथ अस्पताल में दो सप्ताह रहा जहां वे लकवाग्रस्त स्थिति में थी। यथास्थिति बनी हुई थी। मुझे लौटना था।

जब मैं उसे छोड़कर जाने लगा, मैंने मां को चूमा। उसी लकवेग्रस्त स्थिति में भरभराती आवाज में मां ने कहा-तुम मुझे क्यों चूम रहे हो ? जाओ पूरी दुनिया को चूमो (आसमान चूम लो) वह नदी अपनी यात्रा पूरी कर रही थी।

जीवन और मृत्यु के सम्प्रवाह में यह महिला जो भारत में शरणार्थी के रूप में आई थी जिसे एक विधवा ने पाला था, जिसका विवाह एक साधारण सरकारी नौकर से हुआ। जिसका अंतिम वेतन रु. ३००/- था। भाग्य ने जिसकी दोनों आंखें छीन ली और दुर्भाग्य ने लकवे का सेहरा पहना दिया वो मुझसे कह रही थी, **'गो एंड किस द वर्ल्ड'** ।

सफलता मेरे लिए दृष्टि है। अपने कष्टों से ऊपर उठने की ललक है। सफलता कल्पना शक्ति है। यह छोटे लोगों के प्रति संवेदनशीलता है। यह तादाम्य स्थापित करना है। सफलता विश्व बन्धुत्व है। सम्बन्धों की दृढ़ता है। सफलता जीवन से लेने के बारे में नहीं देने के बारे में है। यह साधारण जीवन से असाधारण सफलता प्राप्त करने का नाम है, गुडलक। गो किस द वर्ल्ड। ❑ **अनुवाद -रजनीकान्त शर्मा**

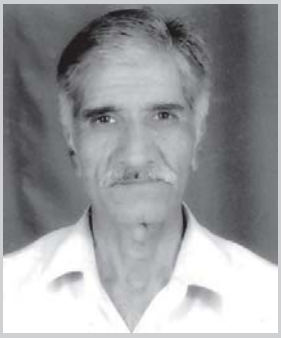

लम्बे समय से लेखन पहल, सामयिक वार्ता, अक्षर पर्व, साक्षात्कार, मुक्तिबोध, एशियन एकेडेमी तथा तनाव में (रेनेर मारिया रिल्के) के अनुवार प्रकाशित। कथन कथादेश में कहानियां प्रकाशित। आकंठ और प्रेरणा में कविताएं प्रकाशित। ८४ में जनार्दन शर्मा स्मृति पुरस्कार, २०११ में सारस्वत सम्मान तथा २००२ में भवभूति सम्मान।

❑

सम्पर्क - २६, बंजरा हिल्स मीनाक्षी चौक, होशंगाबाद-४६१००१
मो. ९९७७१९६४७१

हिन्दुस्तानी फिल्म संगीत

अच्छा इंसान बनने की तालीम

❑

राजेन्द्र बोड़ा

हिन्दुस्तानी फिल्मों में जीवन के सभी रंग, रस और अनुभव मिलते हैं। फिल्मी गाने कथाचित्र का अभिन्न अंग होने पर भी अपनी स्वतंत्र सत्ता भी रखते हैं। फिल्म के कथानक को आगे बढ़ाने के साथ ही पर्दे पर जो कहा जा रहा होता है उसे दर्शक के मन की गहराइयों तक पहुंचाने में गानों की अहम् भूमिका रहती है। हिन्दी फिल्म संगीत के स्वर्णिम दौर में सभी प्रकार की मानवीय भावनाओं को इनमें अभिव्यक्ति मिली। संगीत को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया जाता है यथा शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत या लोक संगीत। मगर फिल्म संगीत को अभी तक सभी श्रेणियों से बाहर रखा जाता है। यह क्योंकि सिनेमा की तरह एक सहकार वाली विधा है इसलिए इसकी परिभाषा करने में दिक्कत आती है। मगर हिन्दी फिल्म संगीत ने अपना एक अलग वजूद बनाया है जिसे नकारा नहीं जा सकता। दुनिया में सबसे अधिक फिल्में भारत में बनती है। हर फिल्म के प्रदर्शित होने के बाद उसका अपना एक समय होता है। बहुत कम फिल्में कालजयी होती हैं। लेकिन समय निकल जाने के बाद भी लोगों के जेहन में यदि पुरानी फिल्मों की याद बनी रहती है तो वह उनके गानों से ही रहती है।

भारतीय सिनेमा को पलायनवादी बताते हुए भले कितना ही कोसा जाय मगर मनोरंजन के इस माध्यम पर यह आरोप कत्तई नहीं लग सकता कि उसने कभी प्रतिगामी विचारों की स्थापना की। हिन्दुस्तानी सिनेमा और उसके संगीत के रसिकों को इस बात का फक्र है कि रुपहले पर्दे के लिए तैयार किये और फिल्माए गानों में हमेशा प्रगतिशीलता झलकी है। आइये फिल्मी गानों में शिक्षा के प्रति सरोकारों पर विचार करें।

आजादी के बाद देश में जब शिक्षा की अलख जगी तो इसमें अपना योगदान देने में सिनेमा भी पीछे नहीं रहा। आधी सदी पहले १९५८ में गुलाम मोहम्मद के संगीत से सजी फिल्म **'मालिक'** की **शकील बदायुनी** का लिखा और आशा भोंसले का गाया यह गीत आज भी मशहूर है **'पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब, तुम बनोगे नवाब/खेलोगे कूदोगे तो होओगे खराब।**

इसी गीत में शकील साहब आगे सीख देते हुए कहते हैं **'जो बच्चे कभी लिखते पढ़ते नहीं/वो इज्जत की सीढ़ी पे चढ़ते नहीं/ यही दिन है पढ़ने के, पढ़लो किताब।'**

इसके दो साल बाद १९६० में आयी फिल्म **'बारूद'** में भी ऐसी ही बात दोहरायी गयी और शिक्षा दी गयी कि पढ़ने लिखने से ही जग में नाम होता है। संगीतकार **खैयाम** की धुन पर **लता मंगेशकर** और मोहम्मद रफी ने **हसरत जयपुरी** का लिखा गीत गाया **'लिखोगे पढ़ोगे तो आगे बढ़ोगे/सितारों से ऊंचा तुम्हारा होगा नाम।'**

इसी प्रकार वर्ष १९५५ की फिल्म थी **'कंगन'** जिसमें संगीतकार **चित्रगुप्त** ने **राजेन्द्रकृष्ण** के बोलों को धुन में कुछ यूं बांधा था : **'लिख पढ़/पढ़ लिख/पढ़ लिख कर/अच्छा सा राजा बेटा बन।'** इस गीत में **गीता दत्त** और **ऊषा मंगेशकर** की आवाजों में शिक्षा दी गयी: **'अपने लिए नहीं, औरों के लिए है ये तेरा तन मन।'**

इससे आगे बढ़ें तो १९६४ की फिल्म **'संत ज्ञानेश्वर'** के लिए **लक्ष्मीकांत प्यारे लाल** ने **लता** से गवाया: **'एक दो तीन चार/भैया बनो होशियार/सबका है कहना/ अनपढ़ ना रहना/ जाओ गुरुजी के साथ।**

वर्ष १९५० में आयी फिल्म **'आंखें'** फिल्म में संगीतकार **मदन मोहन** के निर्देशन में **रजा मेहंदीअली खान** का रचा **मुकेश** और **शमशाद बेगम** का गाया एक मजाकिया गाना है **'हमसे नैन मिलाना बी.ए. पास करके।'** इसमें लड़की कहती है **पास तब आना जब 'बीए पास करके मोहे डिग्री दिखाओ।'**

शेष पृष्ठ १८ पर...

मेरा होना

❑

बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'

कभी मैं रह के भी घर पर नहीं हूं
जहां मैं हूं वहां अक्सर नहीं हूं,
किसी को ठेस मुझसे क्यों लगे जब
किसी की राह का पत्थर नहीं हूं।

गुलों से है मेरा नाता पुराना
बहारों का ही मैं शायर नहीं हूं,
तुम्हारे दर्द का अहसास भी हूं
महज अपनी व्यथा का स्वर नहीं हूं।

भटकना उम्र भर मेरी नियति है
सुबह होती कहीं दुपहर कहीं हूं,
खुला है एक दर मेरे लिए भी
ये क्या कम है कि मैं बेघर नहीं हूं।

किसी के प्यार की पहचान हूं पर
किसी की पीर का मंजर नहीं हूं,
जहर संसार का पी लूं अकेले
मगर मजबूर हूं शंकर नहीं हूं। ❑

गज़ल

दिन ब दिन खुदगर्ज होता जा रहा है आदमी,
बस इसी से रोज रोता जा रहा है आदमी।
दूसरों के रास्ते में खोद कर जैसे कुआं–
खुद उसी में जान खोता जा रहा है आदमी।
दूसरों के दर्द का होगा उसे कैसे पता–
जानकर जो शूल बोता जा रहा है आदमी।
शक की नजरों से सभी को देखता है इस तरह–
स्वयं का विश्वास खोता जा रहा है आदमी।
आदमी, संभावना है, बन सके परमात्मा
पशु समझकर किन्तु जोता जा रहा है आदमी।
देवता तो बन न पाया, हो गया अभिशप्त वह–
अब दनुज साकार होता जा रहा है आदमी।
गांव से लेकर शहर तक बन गयी पक्की सड़क,
फिर गधे का बोझ ढोता जा रहा है आदमी।
प्रेम का उपहार पाकर भी न जो हंसता कभी–
अश्रु में वह सब डुबोता जा रहा है आदमी।❑

जोगी वाला तेरा डेरा

क्या तेरा क्या मेरा बाबा,
जोगी वाला डेरा बाबा,
आज यहां है कल को जाने–
होगा कहां बसेरा बाबा,
चाहे जितना रोके हमको
लोभ मोह का घेरा बाबा
छोड़ सभी चल देना होगा
ज्योंही हुआ सवेरा बाबा
इस बस्ती का आना जाना
जनम मरण का फेरा बाबा,
सागर पार पुकारे कोई
घिरने लगा अंधेरा बाबा,
भूल किसी का दिल न दुखाना
होगा दर्द घनेरा बाबा,
अपना कौन, पराया कैसा
कौन गुरु या चेरा बाबा। ❑

आत्म विश्वास

ज्ञान की धरती
लगन से
साधना के नीर सींची,
भावना की खाद डाली
ऋतु समय पर
प्रेम के बीज बोये
कल उगेंगे अरुण अंकुर
कसमसाकर तोड़ माटी की
तरुण सोंधी परत को
धूप नूतन रूप देगी
चन्द्रमा शीतल करेगा मूल तक को
मेघ वर्षा के सघन घिरकर बरस कर
तृप्त कण–कण को करेंगे
गंध फूटेगी नयी कलियां खिलेंगी
फूल जीवन के हंसेंगे
घर नये, उजड़े बसेंगे
मुक्ति का संवेदना का
फिर नया संदेश देंगी
शरद की गीली हवायें,
फिर छुएंगी प्राण–मन को
रंग बिखरेंगे प्रकृति के
इन्द्रधनुषी कल्पना में सुरभि कविता
की उड़ेगी
मनुज के मन से जुड़ेगी
है अटल विश्वास
फिर उत्सव मनेंगे।❑

**इन्द्रपुरी, पोस्ट–मानसनगर,
लखनऊ–२२६ ०२३**

पढ़ाई में फिसड्डी रहने वालों की मजाक उड़ाते हुए फिल्म **'भाभी'** में **चित्रगुप्त** के संगीत निर्देशन में **राजेन्द्र कृष्ण** का लिखा यह गाना तो खूब लोकप्रिय हुआ ही था: **'टाई लगाके माना बन गये जनाब हीरो/ रहे पढ़ाई या लिखाई में तो जीरो जीरो।'**

हिन्दुस्तानी सिनेमा ने अपने गीतों में बच्चों को देशभक्ति और नैतिकता के भी पाठ खूब पढ़ाये है। सिनेमा ने सच्चाई, इंसाफ, प्रेम, समानता और खुद्दारी के पाठ बच्चों के बहाने बड़ों को भी सिखाये हैं।

'प्यार की राह दिखा दुनिया को/रोके जो नफरत की आंधी।' वर्ष १९६० की फिल्म **'लंबे हाथ'** के लिए जी.एस. कोहली की धुन पर इस गीत में ... गाया गया है - **'तुम्हें मोहब्बत करनी है भूखे नंगे लाचारों से/ तुम्हें तो है इंसाफ मांगना जुल्म के ठेकदारों से/तुम्हें मिटाने हैं ये सारे झगड़े तख्त और ताजों के/तुम्हें बचानी है ये दुनिया तोप तीर तलवारों से ।'**

कवि बच्चों से यह भरोसा भी मांगता है **'वादा करो कि तुम न कभी तूफानों से घबराओगे/मेहनत और सच्चाई की ही राह सदा अपनाओगे/नयी जिन्दगी नयी खुशी का नया दौर तुम लाओगे/देकर अपनी जान भी तुम एक नया जहान बनाओगे।'** फिल्म **'गंगा जमना'** में एक शिक्षक को यह सिखाते हुए दिखाया गया है **'इंसाफ की डगर पे बच्चों दिखाओ चल के/ये देश है तुम्हारा नेता तुम्ही हो कल के।'**

नौशाद की धुन पर **शकील बदायुनी** के इस गीत में तीन छंद हैं जिसे **हेमंत कुमार** ने आवाज दी है। पहले में वे कहते हैं **'दुनिया के रंज सहना और कुछ न मुंह से कहना/सच्चाइयों के बल पे आगे को बढ़ते रहना/रख दोगे एक दिन तुम संसार को बदल के ।'**

शिक्षक इसमें सबकी बराबरी का पाठ भी पढ़ा रहा है **'अपने हो या पराये सबके लिए हो न्याय/देखो कदम तुम्हारा हरगिज ना डगमगाये/ रस्ते बड़े कठिन हैं चलना संभल संभल के।'**

और आखरी छंद में तो मानवता का ही पाठ है **'इंसानियत के सर पर इज्जत का ताज रखना/तन मन की भेंट देकर भारत की लाज रखना/ जीवन नया मिलेगा अंतिम चिता में जल के ।'**

आजादी के सवेरे की लालिमा के दौर में कवि **शैलेन्द्र** ने **'बूट पालिश'** ने इसी जज्बे को अनोखी खूबसूरती से शब्द दिये हैं और रफी ने शंकर जयकिशन की धुन पर इसे गाकर अमर कर दिया। गीत है **'नन्हें मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है।'** बच्चे जवाब देते हैं **'मुट्ठी में है तकदीर हमारी, हमने किस्मत को बस में किया है।'** खुद्दारी की ऐसी शिक्षा बड़े-बड़े भाषण, लेख और किताबें नहीं दे सकती जो इस गीत में मिल जाती है।

कवि पूछता है **'भीख में जो मोती मिले लोगे या ना लोगे ?/जिन्दगी के आंसुओं का बोलो क्या करोगे ?** बच्चे जवाब देते हैं **'भीख में जो मोती मिले तो भी हम ना लेंगे/जिन्दगी के आंसुओं की माला पहनेंगे। बदलेगा जमाना ये सितारों पे लिखा है।'**

मजहब के आधार पर दिलों के बंटवारे को प्रेम में बदलने के महात्मा गांधी के मार्ग को फिल्मी गीतकारों ने खूब बढ़ाया। इंसानियत की ऐसी नैतिक शिक्षा **साहिर लुधियानवी एन दत्ता** के सुरों पर १९५९ की फिल्म **'धूल का फूल'** में देते हैं। **तू हिन्दू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।**

साहिर के लाजवाब बोल कहते हैं: **मालिक ने हर इंसान को इंसान बनाया हमने उसे हिन्दू या मुसलमान बनाया/ कुदरत ने तो बक्शी थी हमें एक ही धरती हमने कहीं भारत कहीं ईरान बनाया/जो तोड़ दे हर बंद वो तूफान बनेगा/ इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।**

वे यह भी कहते हैं, **नफरत जो सिखाये वो धरम तेरा नहीं है/इंसाफ जो रौंदे वो कदम तेरा नहीं है/कुरआन ना हो जिसमें वो मंदिर नहीं तेरा/गीता न हो जिसमें वो हरम तेरा नहीं है।**

हिन्दी फिल्मों के ऐसे गीतों की सूची बहुत लंबी है। ❑

ई-१, गांधी नगर क्लब के पास,
गांधी नगर, जयपुर

पड़ौसी पाठशाला

❑

विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा बहुत आकर्षक है। कितना अच्छा लगता है जब स्कूल की घंटी किसी बच्चे को अपने घर तक सुनायी दे और खेल घंटी में जो अपने घर आ जा सके। दुनिया के कई शिक्षा चिंतकों ने पड़ौसी पाठशाला की पैरवी की है मगर दुर्भाग्य है कि आज स्कूलें सब घरों से दूर चली गयी हैं। यह बात स्थूल अर्थों में भी सच है और भावना के स्तर पर तो और भी बड़ा सच है। सैद्धांतिक रूप से स्कूल का घर के करीब होना न केवल बालकों के लिये सुखदायी है बल्कि उनके विकास को भी सुनिश्चत करता है। इस अवधारणा के बारे में सारे विश्व के शिक्षाविद् एक राय रखते हैं मगर यह कैसी विडम्बना है कि आज हर स्कूल के पास बसों का बड़ा काफिला है और छोटी से छोटी उम्र के बच्चों को कच्ची नींद से जागकर दूर की स्कूलों तक पहुंचना होता है। काश यह परिदृश्य आज कोई बदल दे। ❑ सं.

सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था की दृष्टि से आज हम संक्रमण काल से गुजर रहे हैं। यह सही है कि भारत की शैक्षिक विरासत विश्व में सर्वाधिक पुरानी है। विज्ञान के विद्यार्थी के नाते मैंने यह सीखा कि विज्ञान सत्य की खोज करता है मगर किसी अंतिम सत्य में विश्वास नहीं करता। भारतीय संस्कृति को मैं जितना समझ पाया हूं उससे मेरी इस सोच में परिवर्तन हुआ है। भारतीय मनिषियों ने जीवन दृष्टि के अंतिम सत्यों को खोज लिया था तथा उसी के अनुरूप जीवन पद्धति का प्रचार किया। आज का विज्ञान उसे दीर्घजीवी विकास कह कर उस प्राचीन व्यवस्था को अपनाने पर जोर दे रहा है। ऐसे में शिक्षा में भारतीय जीवन दृष्टि की स्थापना करने की बात करना समय की आवश्यकता ही कही जाएगी। प्रमुख प्रश्न यह है कि विनाशकारी वृक्ष **प्रोसेपिस जूलीफ्लोरा** की तरह जड़े जमा बैठी। **मैकालयी** व्यवस्था को उखाड़ कर उसके स्थान पर गुणकारी नीम के वृक्षों को कैसे रोपा जाये ?

वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान में देश में शिक्षा के नाम पर साक्षरता का महायज्ञ चल रहा है। अत्यधिक सूचनाओं पर आधारित शिक्षा पद्धति मात्र ५ प्रतिशत विद्यार्थियों के हितों का साधन ही बन पाई है। पढ़ने का उद्देश्य मात्र अच्छी नौकरी पाना रह गया है। व्यक्ति की अन्तर्निहित पूर्णता को उजागर करने के बजाय इंजीनियर डॉक्टर या ऐसा ही कुछ जिससे धन कमाया जा सके बनना ही पढ़ने का उद्देश्य हो गया है। ऐसे में विशिष्ट प्रकार के शिक्षण संस्थानों में प्रवेश की लालसा इतनी बढ़ गई है कि सब कुछ अनदेखा किया जा रहा है। हमारी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था शिक्षण संस्थानों की प्रवेश परिक्षाओं की तैयारी कराने वाले माफियाओं की गिरफ्त में चली गई है।

नियमों का कसता शिकंजा

शिक्षा का सरकारीकरण अंग्रेजीकाल में हुआ। अंग्रेजों से पहले मुगलों ने राज किया मगर देश की स्ववित्त पोषित शिक्षा व्यवस्था से छेड़छाड़ नहीं की। **मैकाले** द्वारा भारत में लागू की गई शिक्षा व्यवस्था को तत्कालीन अंग्रेज चिन्तक भी अच्छा नहीं मानते थे। १९३६ में जब गुरुवर रवीन्द्रनाथ की मुलाकात प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक एवं विचारक एच.जी.वेल्स से हुई थी तब भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर भी चर्चा हुई। वेल्स ने मैकाले द्वारा भारत पर लादी शिक्षा व्यवस्था पर चिन्ता व्यक्त की थी। एच.जी.वेल्स ने तत्कालीन ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए कहा कि जब शिक्षा पर शासन का नियंत्रण होता है तो शिक्षा का बंटाधार हो जाता है। उन्होंने मैकाले की शिक्षा व्यवस्था चलाने के योग्य व्यक्ति नहीं माना था।

देश आजाद होने के बाद हमने अंग्रेजों के शिक्षा के ढ़ाचे को जारी रखा है। मेरा मानना है कि इसी कारण कोई बड़ी पहल शिक्षा क्षेत्र में नहीं हो पाई। शिक्षा का अधिकार कानून द्वारा शिक्षा पर सरकारी शिकंजे को अत्यधिक कड़ा कर दिया गया है। इस कानून से पूर्व राजस्थान में बिना किसी मान्यता के प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने की अनुमति थी। इससे निचले स्तर पर शिक्षा के प्रसार को जोरदार बढ़ावा मिला मगर अब बिना मान्यता के किसी भी स्तर पर शिक्षण कार्य संभव नहीं है। पाठ्यचर्या निर्धारण पाठ्य पुस्तके तैयार करने शिक्षण विधियां निर्धारित करने शिक्षकों को प्रशिक्षित करने आदि सभी पर सरकार ने अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया है। प्रत्येक विद्यालय में सरकारी मदद से पिछड़े वर्ग के २५ प्रतिशत बच्चों को पढ़ाने की अनिवार्यता ने स्थिति को और भी जटिल कर दिया है।

देश में शिक्षा व्यवस्था सरकारी प्रचार का विषय बन कर रह गई है। शिक्षा मंत्री व उसके नीचे कार्यरत भारतीय प्रशासनिक अधिकारियों को न तो शिक्षा का ज्ञान होता है और न ही रुचि मगर उनका रुतबा इतना ऊंचा होता है कि उनके मुंह से निकला वाक्य ही कानून होता है। वे शिक्षा प्रशासन को भी सामान्य प्रशासन की तरह डंडे के बल पर चलाते रहे हैं। कभी कभी माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के वर्तमान अध्यक्ष विनीत जोशी जैसा शिक्षा की समझ व उसके प्रति समर्पण भाव से कार्य करने वाला अधिकारी अपवाद स्वरूप शिक्षा क्षेत्र में आ जाता है। ऐसे अधिकारी की आवाज नक्कार खाने में तूती की आवाज बन कर रह जाती है।

शिक्षा के मामलों में शिक्षाविदों की बात नहीं सुनी जाती। शिक्षा क्षेत्र में सुधार के नाम पर इतने आयोग बैठाए गए मगर किसी एक भी रिपोर्ट लागू नहीं की गई। **प्रोफेसर यशपाल** का यह कहना कि मेरी बात नही मानी जा रही है स्थिति को स्पष्ट करता है। ऊपर के अधिकारियों की मनमर्जी के चलते नीचे के स्तर पर पहल करने की इच्छा शक्ति मर चुकी है। शिक्षा क्षेत्र में उत्साह का नितान्त अभाव है। इसी कारण देश की आजादी के छः दशक पूरे होने के बाद भी हम ठीक पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें तैयार नहीं कर पाए हैं। **नीसा** परीक्षण में भारत का फिस्सडी रहना तथा **प्रथम व असर** द्वारा देश की प्राथमिक शिक्षा पर जारी है २०१० की रिपोर्ट इस बात की पुष्टि करती है।

असफल रहे हैं परिवर्तन के प्रयास

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में विकसित होने के लिए हमें वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का विकल्प ढूंढना अति आवश्यक है। यह सच है कि देश की शिक्षा व्यवस्था को मैकालय के मकड़जाल से निकालने के प्रयास महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, गुरुवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि महान विभूतियों द्वारा किए गए। निःसंदेह वे प्रयास भारतीय सोच के अनुरूप थे मगर हमें इस सच को भी स्वीकारना होगा कि वे सभी प्रयोग एक सीमित क्षेत्र तक ही हो पाए। मैकालयी शिक्षा व्यवस्था को बदलने का प्रथम प्रयास **गुरुवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने किया था। उनका वह प्रयास तो उनके समय में ही असफल हो गया था तथा शान्ति निकेतन को चलाए रखने हेतु उन्हें उसी मैकालयी पद्धति को अपनाना पड़ा था। गुरुवर ने यह कहकर अपने मन को संतुष्टि दी थी कि देश के आजाद होने पर शायद उनके विचारों के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था की जावे। स्पष्ट है कि हमें इस कार्य को उसी बिन्दु से प्रारम्भ करना होगा जहां गुरुवर ने छोड़ा था।

प्राचीन शिक्षा विकल्पों पर विचार करते समय हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि आज देश की राजनैतिक स्थिति वह नहीं है जो प्राचीन काल में थी। देश की विशाल जनसंख्या भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। कुछ भी करने से पूर्व राजनीतिक माहौल तैयार करना होगा। राजसत्ता से अधिकार छीन कर उनको शिक्षकों में निहित करना कोई सरल कार्य नहीं है।

ऐसा करने से पूर्व हमें ऐसे सक्षम शिक्षकों को भी तैयार करना होगा जो इस उत्तरदायित्व को सहज उत्साह व कौशल के साथ संभाल सके। अर्थ की समुचित व्यवस्था भी करनी होगी।

बहुत कठिन कार्य है शिक्षा के ढर्रे को बदलना

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन करना कोई आसान कार्य नहीं है। छोटे मोटे प्रयोग से लाभ होने वाला नहीं। सम्पूर्ण देश के स्तर पर कार्य करना होगा। प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली के चलते नियमों में परिवर्तन का कार्य सभी को साथ लेकर ही किया जा सकता है। यह कार्य असम्भव भी नहीं है। वर्तमान व्यवस्था से लोग त्रस्त है। अन्ना हजारे ने यह दिखा दिया कि यदि कोई विश्वसनीय विकल्प प्रस्तुत किया जाये तो लोग साथ जुड़ते जाते हैं।

कारगर हो सकती है पड़ौसी पाठशाला

उपरोक्त सभी बिन्दुओं को ध्यान में रख कर विकल्प पर विचार करने पर मेरा ध्यान पड़ौसी विद्यालय की अवधारणा की ओर जाता है। पड़ौसी विद्यालय की अवधारणा हमारे देश में **श्री दौलतसिंह कोठारी** की अध्यक्षता में बने शिक्षा आयोग (१९६४) ने दी थी। शिक्षा के अधिकार के कानून में पड़ौसी विद्यालय का नाम लिया गया है मगर वह कोठारी आयोग की अवधारणा के अनुरूप नहीं है। इसी कारण शिक्षा के

अधिकार कानून की आलोचना की जा रही है।

शिक्षा आयोग (१९६४-६६) के बिन्दु १०-१९ में कहा गया है कि यदि शिक्षा को सामाजिक व राष्ट्रीय एकता का शक्तिशाली माध्यम बनाना है तो हमें प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा को अपनाना होगा। पड़ौसी पाठशाला का अर्थ यह है कि पाठशाला के पड़ौस में रहने वाले सभी बच्चों वे चाहे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या विश्वास के हों को अनिवार्यत: उसी पाठशाला में पढ़ना होगा। इसमें आर्थिक विषमता भी बाधक नहीं होगी। अमीर गरीब नेता व अधिकारी सभी के बच्चों को पड़ौसी पाठशाला में ही पढ़ना होगा। आयोग का मानना है कि जनभागीदारी बढ़ने के कारण सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलने लगेगी। समाज के शक्तिशाली वर्ग के पाठशाला से जुड़ने से आर्थिक पक्ष भी सबल होगा। आयोग ने २० वर्षीय दीर्घ योजना बना कर अलग अलग स्तर पर इस अवधारणा को लागू करने का सुझाव दिया था। दुर्भाग्य अब तक किसी भी सरकार ने पड़ौसी पाठशाला में रुचि नहीं दिखाई । जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में पड़ौसी पाठशाला को साकार करने की बात कही थी। बिहार की **नीतीश कुमार** की सरकार ने पूर्व विदेश सचिव **मुचकुन्द दुबे** की अध्यक्षता में एक समिति बिठाई थी जिसने बिहार प्रदेश में पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा को सजीव करने के उद्देश्य से सुझाव सरकार को दिए हैं और बिहार की राज्य सरकार ने केन्द्र से पर्याप्त धन की मांग की है।

पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा को लागू करना असम्भव बात नहीं है। कनाड़ा, संयुक्त राज्य अमेरिका व अन्य कई विकसित देशों में पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा बहुत प्रभावी ढंग से चल रही है। बच्चों को संस्कारित करने के लिए उन्हें अधिक समय तक शिक्षकों के सम्पर्क में रखना होता है। इसके लिए कई आवासी विद्यालय अभी चल रहे हैं। बच्चों को आवासी विद्यालय पढ़ाने की क्षमता हर परिवार में नहीं होती है। सरकार के लिए भी हर बच्चे के लिए आवासी विद्यालय उपलब्ध करवाना फिलहाल तो असम्भव ही लगता है। पड़ौसी विद्यालय घर के नजदीक होने के कारण

बच्चों को अधिक समय विद्यालय में रोकना या दो बार विद्यालय बुलाने में भी कोई परेशानी नहीं होगी।

आज एक ही मुहल्ले के बच्चे अलग अलग विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं इस कारण मुहल्ले की सामाजिकता भी भंग होती जा रही है। विद्यालय आने जाने में बच्चों का बहुत समय व्यर्थ होता है। उनको शारीरिक कष्ट भी उठाना पड़ता है। महंगे भावों का हजारों लीटर डीजल व्यर्थ में जल कर प्रदूषण बढ़ा रहा है। सड़क पर यातायता का दाब भी बढ़ता जा रहा है। बच्चे आए दिन दुर्घटनाओं के शिकार होते रहते हैं। पड़ौसी पाठशाला से ये सभी परेशानियां समाप्त हो सकती हैं।

विभिन्नता को स्थान मिल सकेगा

पड़ौसी पाठशाला से एक अन्य लाभ पाठशालाओं में विविधता उत्पन्न करने में भी मिलेगा। आज सभी पाठशालाएं एक ही ढर्रे से चल रही है। इसी से बेरोजगारों की भीड़ पैदा हो रही है। पड़ौसी पाठशाला में क्षेत्रीय आवश्यकता अनुसार अच्छे परिवर्तन किए जा सकेंगे। बच्चों के अभिभावकों की मदद बच्चों को विविध आयाम उत्पन्न करने में लिए जा सकेंगे। इस प्रसंग में विज्ञान में दो बार की नोबल पुरस्कार विजेता **मेडम क्यूरी** द्वारा शिक्षा क्षेत्र में किए गए एक प्रयोग का उल्लेख लाभकारी होगा। मेडम क्यूरी ने अपनी बस्ती के लोगों के साथ मिलकर अपने बच्चों के लिए पाठशाला प्रारंभ की थी। सभी अभिभावक बारी-बारी से पाठशाला में जाकर अपनी विशेषता के अनुसार बच्चों को कुछ सीखाने का प्रयास करते थे। ऐसा करने पर भारतीय संस्कृति के फैलाव में मदद मिलेगी। आज बच्चों पर टी.वी.पर चिपके रहने का आरोप लगता है मगर मेरा मानना है कि बच्चों के पास खेलने का विकल्प नहीं होने के कारण ही वे टी.वी. के सामने जाते हैं। पड़ौसी विद्यालय इसका अच्छा विकल्प दे सकेगा। समाज की भागीदारी के साथ सामयिक तीज त्यौहारों का आयोजन भी पड़ौसी पाठशाला में अच्छी तरह संपन्न किए जा सकते हैं ।

शिक्षा में भारतीय दृष्टि को जितनी हानि मैकाले के काल में नहीं हुई थी उससे अधिक हानि तथाकथित अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के कारण हो रही है। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में हो यह विमर्श शिक्षाविद् निरन्तर देते रहे हैं मगर अज्ञानतावश लोग प्रारम्भ से ही अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलाने में रुचि लेने लगे हैं। कोई भविष्यवाणी तो नहीं की जा सकती मगर मेरा अनुमान है कि पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा के विकसित होने पर कुकरमुत्ते की तरह उगते तथा कथित अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों पर भी रोक लग सकेगी।

शिक्षा के लिए स्वतंत्र नियामक हो

पड़ौसी पाठशाला को रोजमर्रा की राजनीति से अलग करने हेतु शिक्षा पर से सरकार का सीधा हस्तक्षेप समाप्त कर उसे उच्च अधिकार प्राप्त स्वतंत्र नियामक के अन्तर्गत दिया जाना होगा। जिला पर जिला बोर्ड तथा विद्यालय स्तर पर संचालन समितियां बनने पर प्रशासनिक कठिनाईयां कम होगी। अच्छा कार्य करने वाले विद्यालयों को संचालन में अधिक अधिकार दिए जा सकें तथा कमजोर विद्यालयों को अतिरिक्त सहायता दी जा सकेगी। ❑

पूर्व प्रधानाचार्य, २, तिलक नगर पाली-३०६४०१ (राजस्थान)
मो. -०९८२९११३४३१

अक्षर पढ़ पाना, अक्षर जोड़कर शब्द पढ़ पाना ही काफी नहीं है। पठन-पाठन वह 'खिड़की' है जिसमें संसार दिखता है, यह शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। जब बच्चा तेजी से और धाराप्रवाह पढ़ सकेगा केवल तभी यह उपकरण इस्तेमाल के लिए तैयार होगा।

❑

वसीली सुखोम्लीन्सकी

विजय दान देथा

❑

सपना महेश

अभी हाल ही में भास्कर दूरदर्शन में काम करने वाली सपना महेश बोरूंदा की यात्रा करके लौंटी हैं। बौरूंदा राजस्थान का एक ऐसा गांव है जहां पूरे देश के बड़े से बड़े साहित्यकार रास्ता खोजते हुए पहुंचते रहे हैं। इस गांव की अपनी एक अलग कहानी है। उस कहानी के केन्द्र बिन्दु में विजयदान देथा और उनके परिजन है। विजयदानजी को सभी लोग प्यार से बिज्जी कहते हैं और बिज्जी अपने पाठकों के अपने बिज्जी हो गये हैं। बिज्जी ने राजस्थान की लोककथाओं का गहन अध्ययन करने के बाद उन्हें अपनी भाषा में फिर से कहा। कथा कहने की परम्परागत शैली का पुनरुद्धार किया। कहानियों को भी नये सिरे से व्याख्यायित किया। उनकी मूल्यगत खामियों से उनको मुक्त किया और नये रूप में नये सिरे से पाठकों के सामने परोसा। यही वजह है कि बिज्जी की तपस्या को तस्लीम करने की ललक उनके हर पाठक के मन में है। ❑ सं.

दीवाली से ठीक पहले का मौसम हल्का भूरा, अगर राजस्थान में जोधपुर जाने के लिए बौरूंदा होते हुए जाएं.... लगा बिज्जी से मिलना चाहिये और उनका फोन पर कहना **'जिन्दा हूं और लिख नहीं पाता** इससे मौत भी ट्रेजडी नहीं हो सकती,' बिज्जी दो बार बाथरूम में गिर गये थे।

पद्मश्री विजयदान देथा से पहले मेरी मुलाकात उनकी कहानी **'लजवंती'** से हुई, और वो भी बहुत वर्ष पहले सपनों की उम्र में, अनोखे प्रयोग गोपाल भारद्वाज एंथ्रोपोलोजी के विषयों को कक्षा में बिज्जी की कहानी सुनाते हुए समझाते थे। अन्य विद्यार्थियों के लिये यह प्रक्रिया विचित्र थी मेरे लिये अद्भुत तकरीबन २० वर्ष बाद भी यह घटना मुझे बिज्जी की कहानी, लजवंती और गोपाल भारद्वाज सर के घेरे में पहुंचा देती है।

फिर **'बातां री फुलवाड़ी'** (विजयदान देथा के राजस्थानी में लिखे कहानी संग्रह) अंक के सभी अंक पढ़ लिये। अपनों के लिए जोर से कहानी पढ़ना बिज्जी का आशीर्वाद था। जिन्हें राजस्थान का शेक्सपीयर कहा जाता है। पद्मश्री देथा साहित्य अकादमी और साहित्य चुड़ामनी एवार्ड से ही नहीं नवाजे गये, बल्कि अब तो लोककथा और बिज्जी पर्याय बन गये हैं उन्होंने अब तक ८ सौ से भी अधिक कहानियां लिखी हैं। **लक्ष्मीमल सिंघवी** ने कई बरस पहले कहा था कि बिज्जी अब लिखना भी बंद कर दें तो नोबेल पुरस्कार के लिए पर्याप्त हैं।

ड्राईवर ने पुष्कर से होते हुए बौरूंदा पहुंचाने की सोची। गांव थांवला से लोगों ने बिज्जी के बौरूंदा को बताना शुरू कर दिया जैसे वो कोई ऐतिहासिक इमारत है और उसके बारे में बताना गर्व की बात है, गांव बौरूंदा में पहुंचने पर जब हम अपने से गलत

सड़क पर मुड़ गये तो ठेठ मारवाड़ी में उस पुरुष ने हमें उलाहना दिया है ? गलत सड़क पकड़ ली... जैसे उस रास्ते को भटकना अपराध है। धूल से भरा बौरूंदा, जहां सूरज धूल में उग कर कणों की चमक देता है अद्‌भुत चित्र बनाता है।

चारण परिवार में जन्मे विजयदान जी के पिता सबलदान जी देथा भी कवि थे। बिज्जी ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर की कहानियां लिखी उन्होंने भी चैखव की तरह उपन्यास नहीं लिखा। उनकी सभी कहानियां मूल रूप से राजस्थानी में लिखी गई, मगर जब दो कहानी संग्रह हिन्दी में आये **दुविधा और उलझन** तो दुनिया स्तब्ध रह गई। मृत कथा वाचन शैली **'बात पोसी'** विद्या का जीवंत अनुभव। अपनों के लिए बिज्जी खुद की कहानियों को स्वयं पढ़कर सुनाते हैं और अब कहते हैं 'कभी लिखा काटता नहीं था लगातार लिखता था प्रुफ रीडिंग के समय ही वापस देखता था भगवान को भी लगा इसे तो पारस पत्थर मिल गया और उसने मुझसे लिखने की विद्या ही छीन ली। मणिकॉल ने खूब बरस पहले कहा था **'तुम तो छुपे हुए ही ठीक हो, तुम्हारी कहानियां शहरी जानवरों तक पहुंच गयी तो वे कुत्तों की तरह उन पर टूट पड़ेंगे।'** किसी एक वक्त की ढलान पर, कुदरत की गोद में एक गांव बसा हुआ था, अपनी मर्यादा लायक वो गांव एक मगरे पर काफी ऊपर बसा हुआ था' (लजवंती), 'प्रीत के प्रत्यक्ष अख्यान तो बहुतेरे लिखे गये ना कोई सीमा, ना कोई अन्त, मगर अजाने अदीठ प्रेम की वार्ता तो संयोग से मेरे ही हाथ लगी' (अदीठ) तो बड़ी रातों का बड़ा ही भोर। जूनी रातों का नया ही जोर। जिस तरह दूध में मक्खन छिपा रहता है, उसी तरह जूनी बातों में सत्य छिपा रहता है।' (बड़ा कौन)

अपनी आत्म कथ्यात्मक पुस्तक 'रुंख' में उन्होंने लिखा कि राजस्थान में लिखना तो मेरे लिए पंछियों के कलरव की तरह नैसर्गिक था, उन्होंने लिखा जिन्दा रहते जिस तरह सांस लेता हूं...उसी तरह पढ़ना, ... मेरे लिए पढ़ना अनिवार्य है, लिखना अनिवार्य है, सच मुझे अब तक नहीं मालुम मैंने कितनी कथाएं लिखी है। सांस धड़कन व कदम क्या कोई गिनती की चीज है ? और बिज्जी आज भी सुबह सवेरे नित्य कार्य से निर्वत होकर पढ़ते हैं, दोपहर एक घंटा आराम और फिर से देर रात तक पढ़ते है। हम उनके घर पहुंच गये उनका पोता हमें बिज्जी के पास ले गया वे अभी भी पढ़ रहे थे, मैंने बाहर से ही कहा 'बिज्जी'... बिज्जी। अरे सपना तुम तो कल आने वाली थी, भई मुझे फिक्र हो गई, तुम्हारा नम्बर पोस्टकार्ड पर लिखकर भेज देती, तुम्हें वापस फोन भी नहीं कर सका, बेटी ने झुककर बिज्जी के पांव छुए और मेरे रोंगटे खड़े हो गये। पद्‌मश्री विजयदान देथा नोबेल पुरस्कार के साहित्य श्रेणी में नामांकन (चौबूली रानी) कि मेरी बेटी आने वाली अपनी सदी को बता सकेगी कि इस महान साहित्यकार ने बड़े अनुरोध और प्रेम से हमें भोजन करवाया था। नोबेल के लिए क्रिस्टीए मेरिन ने चौबीली नाम में उनकी कहानियों का कैलाश कबीर के साथ मिलकर अंग्रेजी में अनुवाद किया और नोबेल में यह कथा संग्रह नोमिनेट हुआ। वे आज कहते हैं कि विदेश जाता था, भांति भांति के पेन खरीदता था, कुछ मित्रों को देता अब तो बॉलपने से ही लिख लेता हूं।

आज भी विजयदान देथा जिन्हें सभी जीसा कहते हैं (उनके गांव और आस-पास के गांव, साहित्य जगत में उनकी पहचान बिज्जी से) को जानने के लिए पूरी तरह से रूख पढ़ी जा सकती है अद्‌भुत आत्म कथ्यात्मक पुस्तक। उन्होंने तब कहा 'रूख की तैयारी के पहले मैं जो व्यक्ति था, इसके समापन होते-होते बहुत कुछ बदल गया।'

खास बात यह है कि बिज्जी ने लोक कथाओं को समकालीन बनाया और कुछ कथाओं को आज के दौर को संबोधित करते हुए लिखा। अलेखू हिटलर कथा समाप्त होती है, 'और उधर सड़क पर एक चित्र किसी ऊंचे पारखी की बांट जोह रहा था, लाल खून

के बीच सफेद मगज। बोतल के टुकड़े एक आदमी की लाश। सफेद फिरोजी बनियान ठौर-ठौर खून के धब्बे। सपनों का कचूमर। मोह-प्रीत के रेले। चित्र कोई बुरा नहीं था।

विजयदान जी की कहानियों पर फिल्म, नाटक, टी.वी. नाटक का निर्माण हुआ कभी मणि कौल ने दुविधा बनाई तो आज अमोल पालेकर ने पहेली, हबीब तन्वी ने चरणदास चोर का नाटय मंचन किया तो मानुषी ने दोहरी जिन्दगी का अंग्रेजी अनुवाद कर मानुषी में प्रकाशित किया, अधिकांश कहानियों के नाटक भी मंचित हुए दीपक केजरी केजरीवाल, मृणाल पाण्डे, असगर वजाहत आदि दूरदर्शन पर एक श्रृंखला बिज्जी की कहानियों पर प्रसारित हुई। इस पर बिज्जी ने कहा 'मुझसे मेरा सृजन स्वतंत्र हो गया।'

कोई भी लेखक हमारे आज को बरसों तक जीवित रखते हैं अपने अन्दर के विचारों को स्त्री की तरह पीड़ा सहते हुए जन्मते हैं देश काल को धरोहर बनाते हुए और स्वयं इतिहास बन जाते हैं। इस पर भी हम उस रचना प्रक्रिया पर विवाद खड़े करते हैं उनके होते हुए और उनके जाने पर उसी की रचनाओं का उत्सव मनाते हैं।

बिज्जी की कहानियों के सभी स्त्री पात्र सामन्ती व्यवस्था से छूट कर बाहर आती सी दिखती है जहां समाज के पहले स्वयं से विद्रोह है और तब वो चाहे दुविधा हो, कैंचुली, लाजवंती, दोहरी जिन्दगी, न्यारी-न्यारी मर्यादा की नायिकाएं हो या दूजी कबीर की राजकुमारी। रुंख में रवीन्द्रनाथ की कथा स्त्रीतेर पत्र की समीक्षा बिज्जी ने नायिका मृणालीनी को पत्र लिखकर एक अद्भुत तरह से किया था।

उस दिन बौरूंदा में बिज्जी ने अपने सामने बैठाकर खाना खिलाया कहा 'रसोड़े में कहो, दो सब्जियां, रायता, चावल, कुछ मीठा बनाना सीरा, देसी घी में'। पोता निर्मल खड़ा रहा मानो जीसा के अतिथि उस के लिए भगवान है, बोले खाना खालो फिर तुम्हें बी.एड. कॉलेज दिखाकर लाता हूं। और कभी महेशजी से पूछते थे ये तुम पर अपनी कमाई की धौंस तो नहीं मारती,' और तब मुस्कारा देते और आज मुझसे कहते हैं 'तुम लाचार नहीं हो' एक संदेश कि जीवन जीने के लिए प्रेम और आत्म सम्मान का अनूठा संगम हो।

बिज्जी की कहानियों पर कुछ साल पहले कोलाज पेंटिंग बनाई थी और प्रदर्शनी लगाई थी बिज्जी को जब यह चित्र दिखाए तो वे उन्हें अचरज से देखते रहे रचनाकार नहीं मात्र दर्शक।

किसी भी रचनाकार के बारे में बात करते समय उसके शिल्प, भाषा, काल खंड की समझ आदि ही मुख्य बिन्दु होते हैं मगर, अगर किसी महान कथाकार के बारे में लिखा जाए तो कैसे ? उनको समझने के लिये केवल आंख भर आये ऐसी समझ ही पर्याप्त है।

किसी भी रचनाकार के बारे में बात करते समय उसके शिल्प, भाषा, काल खंड की समझ आदि ही मुख्य बिन्दु होते हैं मगर, अगर किसी महान कथाकार के बारे में लिखा जाए तो कैसे ? उनको समझने के लिये केवल आंख भर आये ऐसी समझ ही पर्याप्त है। विजयदान जी रूख आरम्भ करने से पहले भवभूति के श्लोक का हिन्दी अनुवाद लिखते हैं। (जो गोपाल भारद्वाज ने किया है)

हंसते हुए डंसते हुए,
उपेक्षा दंश से जो लोग
वे ये जान लें अच्छी तरह
मेरे सृजन के यत्न ये
उनके लिए बिल्कुल नहीं
सीमित नहीं है काल यह
दिन-मास-वर्षों में कलित।
है काल सागर आकलन या
संकलन की अवधियों के पार भी।
विपुला मही बंजर नहीं, है उर्वरा
उत्पन्न होंगे ही कहीं,
कुछ लोग मुझ जैसे कभी
पहचान कर मेरी कला
सहधर्मिता की आंख से
अपना सकेंगे आत्मवत् इसको वहीं।

उन सभी के लिए जो इसी युग में जी रहे हैं। बिज्जी से हाल की मुलाकात और उनका सारा कार्य सर आंखों पर। रमेश थानवी, संपादक अनौपचारिका जी ने उस दिन बौरूंदा को तीर्थ स्थल कहा फिर से साधू, की वो लोग संस्कृति को धरोहर बनाते हैं और साधू उन सभी को भी जो अंजुरी भर उस धरोहर का प्रसाद पाते हैं। वो सभी बने रहे...। ❑

के-३५, हिम्मत नगर, टोंक रोड, जयपुर

हिरोशिमा का दर्द

❑

तोमोको किकुचि

आज से ठीक एक साल पहले जापान में बड़ा भूकंप और विनाशकारी त्सुनामि की तबाही हुई और फुकुशिमा में स्थित परमाणु संयंत्र बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया। अब धीरे-धीरे फुकुशिमा की त्रासदी भूली जा रही है और देखने में तो जापान के तोक्यो में भी लगभग सामान्य जीवन वापस आ गया है। ऐसी स्थिति में फुकुशिमा के माता-पिताओं ने फुकुशिमा की त्रासदी को हमेशा याद रखने के लिए गत फरवरी को एक पुस्तक का प्रकाशन किया, जिसका नाम है **'फुकुशिमा के बच्चों की चिट्ठियां।'** इस पुस्तक के लिए फुकुशिमा के ५६ बच्चों ने मनपसंद की तस्वीर खींची और उसके साथ अपने मन की बात भी लिखी। फुकुशिमा के बच्चे आज भी बाहर ज्यादा नहीं खेल सके और ऐसे भी कई बच्चे हैं जो अपना घर छोड़कर फुकुशिमा से बाहर दूसरे शहर में शरण लेने को मजबूर हैं। इस पुस्तक में बच्चों की चीख सुनाई देती है। सातवीं कक्षा की छात्र यूया ने अस्थियां और कब्र की तस्वीर खींची और लिखा है, 'कोई मुझे बताएं कि हमारे साथ अब क्या होने वाला है, क्या मैं कितने साल तक जी सकता हूं और क्या मैं फुकुशिमा में रह सकता हूं ?' तीसरी कक्षा की छात्र जुंया ने लिखा है, 'हमारा फुकुशिमा रेडियेशन से दूषित हो गया और मुझे दूसरी जगह जाकर रहना पड़ा। छोटे भाई और दोस्तो से बिछुड़ गया। मैं बहुत दुखी हूं।' एक छोटी लड़की ने लिखा है, 'बाहर जाकर फूलों को लेना चाहती हूं, ऐसा दिन जल्दी आए।' जो लड़का शरणस्थान में रहता है, उसको यह पूछा गया कि तुम्हें क्रिसमस के तोहफे के लिए क्या चाहिए। उसने बताया, 'पापा और दादी।' पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाला लड़का लिखता है, मैं कितने साल तक जी सकता हूं ? इस गर्मी के मौसम में मुझे कपड़े से पूरा शरीर ढककर स्कूल जाना पड़ता है। बाहर भी नहीं खेल सकता। खिड़की भी नहीं खोल सकता, जबकि पिछले साल तो खेल सकता था।' तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला लड़का लिखता है, 'दादा दादी से विदा करते समय मुझे बहुत दुख हुआ था।' मैं अपना स्कूल नहीं बदलना चाहता था।' प्रथम कक्षा में पढ़ने वाला लड़का लिखता है, 'मुझे रेडिएशन को खत्म करने वाला यंत्र चाहिए।' इस पुस्तक में बच्चों का क्रोध भी सुनाई देता है। पन्द्रहवी कक्षा की छात्रा लिखती है, परमाणु संयंत्र के कारण मेरा जीवन पूर्ण रूप से बदल गया। मुझे परमाणु संयंत्र से घोर नफरत है। परमाणु संयंत्र की दुर्घटना के बाद मेरे मन में ये तीन भाव हमेशा आते रहते हैं कि चिंता, दुख और खीझ। मैं अपने शरीर की चिंता करती हूं। क्यों ऐसी तबाही हुई और क्यों यहीं पर होनी थी ?' तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला लड़का फुकुशिमा में पिता को छोड़कर अपनी मां और छोटी बहन के साथ दूसरे शहर में शरण लेता है। उसने लिखा है, 'मैं फुटबाल का खिलाड़ी बनना चाहता हूं। परन्तु अब के फुकुशिमा में पहले की तरह फुटबॉल नहीं खेला जा सकता। कब रेडिएशन यहां से चला जाएगा ? क्या मैं बड़ा बन सकता हूं ? मैं जल्दी से बाहर खेलना चाहता हूं। पापा से बिछुड़कर नहीं रहना चाहता, दोस्तों से बिछड़कर नहीं रहना चाहता। कृपया कोई हमें बचाइए।' पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाली लड़की भी अपनी मां के साथ दूसरे शहर में शरण लेती है। उसने लिखा है, 'जब मैं फुकुशिमा में रहती थी, तब घर से बाहर नहीं निकल सकती थी। स्कूल में बताया गया कि हम मैदान में नहीं खेल सकते। धीरे धीरे मैं सोचने लगी कि

मुझे यहां नहीं रहना चाहिए। हमें इतना कष्ट देने वाले परमाणु संयंत्र से मैं बहुत नफरत करती हूं। जल्दी से परमाणु संयंत्र को खत्म कर फुकुशिमा की सफाई कीजिए, ताकि सब लोग यहां वापस आ सके।' कोइजुमि ताइसेम फुकुशिमा के स्कूल में प्रथम कक्षा में पढ़ता है। उसने एक कविता लिखी है, जिसका नाम है, मैं जिससे डरता हूं।

त्सुनामि, भूकम्प, रेडिएशन, शेर, मां, भूत।

मुझे त्सुनामि से बहुत डर लगता है, क्योंकि वह सभी को बहा कर ले जाता है।

मुझे भूकम्प से भी डर लगता है, क्योंकि जब धरती हिलती है तो मेरा हृदय धड़कने लगता है।

मुझे रेडिएशन से भी डर लगता है, क्योंकि उसी की वजह से हम मर सकते हैं।

मैं मरना नहीं चाहता।

मैं अकेले में दुखी हो जाता हूं, इसलिए सब के साथ खुशी से रहना चाहता हूं।

मैं सोचती हूं कि हमने यह कैसा समाज बना दिया, जिसमें बच्चा बच्चे की तरह नहीं रह सकता और उन्हें इतनी छोटी उम्र में मृत्यु की छाया से डरना पड़ता है। हम बड़ों ने ही बच्चों को इस हाल में डाल दिया है और हमें उनके सामने अपने आप को जवाबदेह समझना चाहिए। सन् १९८६ में जिन लोगों के साथ चेरनोबील के परमाणु संयंत्र की दुर्घटना हुई, वे लोग आज फुकुशिमा की दुर्दशा देखकर अफसोस करते होंगे कि दुनिया को हमारी त्रासदी से सबक लेना चाहिए था और हमारे दर्द से शिक्षा लेनी चाहिए थी। अगर फुकुशिमा की त्रासदी का दोहराव फिर से विश्व में कहीं पर हो जाता, तो फुकुशिमा के निवासी भी ठीक उसी प्रकार का दुख महसूस करेंगे। हमें इतिहास से सीखना चाहिए और गलती को दोहराना नहीं चाहिए। विश्व के भविष्य के लिए और आज के बच्चों के जीवन के लिए। असलियत यह है कि आज उस आपदा से एक साल बीतने के बाद भी फुकुशिमा में नितांत असामान्य जीवन चल रहा है। वहां आज भी रेडिएशन का खतरनाक स्तर है और बच्चों के शरीर में बुरी तरह से असर पड़ रहा है। उस दिन वहां की धरती, हवा, समुद्र आदि सब रेडिएशन से दूषित हो गए थे, वैसे ही आज भी दूषित है। हमें इस यथार्थ को कभी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

हमारे मानव इतिहास में द्वितीय युद्ध के समय में एक दर्दपूर्ण दुर्घटना हुई थी जिससे भी हमें सबक लेना जरूरी है। जापान के हिरोशिमा शहर और नागासाकि शहर में सन् १९४५ के ६ अगस्त और ९ अगस्त को अमेरिका ने परमाणु बम गिराया था। असल में आज के युग में जिनके साथ युद्ध या परमाणु बम का साक्षात अनुभव हुआ, ऐसे लोगों की संख्या कम होती जा रही है। जो लोग युद्ध के यथार्थ को नहीं जानते, वे युद्ध या परमाणु बम की त्रासदी को कैसे पूर्ण रूप में समझ पाएंगे। इसलिए तत्काल के प्रत्येक दर्दपूर्ण अनुभवों का पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित करने की सख्त जरूरत है। जापान विश्व में ऐसा एक मात्र देश है, जिस पर परमाणु बम गिराया गया। एक जापानी होने के नाते हमारे पास ऐसा अधिकार और कर्तव्य है जो विभिन्न तरीकों के माध्यम से हम लोगों को यह चेतावनी देते रहें कि हमें परमाणु बम की त्रासदी को फिर कभी दोहरना नहीं चाहिए। मेरी आशा है, बच्चों के हृदय को इतना मजबूत बनाया जाए कि विश्व, परिवार, इंसान सभी को निश्चित रूप से विध्वस्त करने वाले युद्ध का वे हमेशा विरोधी रहें। अगर हम अपने भविष्य को युद्ध रहित बनाना चाहते हैं तो भविष्य के निर्माता रूपी बच्चों को युद्ध के यथार्थ से परिचित कराना होगा। क्योंकि तभी बच्चे विश्व शांति का महत्त्व भी समझ सकते हैं।

इसी संदर्भ में एक कोशिश के रूप में मैंने जापान की अत्यंत लोकप्रिय सचित्र पुस्तक 'हिरोशिमा नो पिका' का हिन्दी में सिद्धहस्त अनुवाद किया और पिछले वर्ष के नवम्बर में 'हिरोशिमा का दर्द' शीर्षक से नेशनल बुक ट्रस्ट ने प्रकाशित किया। जापान में इसी पुस्तक के माध्यम से स्कूलों के बच्चों को हिरोशिमा में गिराए गए परमाणु बम की त्रासदी और विश्व शांति की शिक्षा दी जाती है। इसकी कहानी एक जापानी औरत के व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है कि जब हिरोशिमा शहर में परमाणु बम गिरा, तब सात साल की छोटी लड़की को किस प्रकार उसका सामना करना पड़ा और उसकी मां को कैसे नरक जैसे शहर में इधर उधर भागना पड़ा, अपनी बेटी को बचाकर और अपने घायल पति को अपनी पीठ पर उठाते हुए। इस कहानी के अंत में लड़की की मां कहती है, 'परमाणु बम कभी नहीं गिरता, अगर इंसान उसे नहीं गिराता।' इस संदेश को हमें अच्छी तरह समझना चाहिए। इस पुस्तक की रचनाकार सुश्री तोशि मारुकि जापान में प्रसिद्ध चित्रकार है। उन्होंने विश्वयुद्ध के समय परमाणु बम से क्षतिग्रस्त हिरोशिमा शहर और वहां के नागरिकों को साक्षात देखा और बाद में उसी दृश्य के अनेक चित्र बनाए, जो 'गेंबाकु नो जु' (परमाणु बम का चित्र) नाम से जाना जाता है। 'हिरोशिमा का दर्द' में प्रस्तुत चित्र भी उच्चकोटि की कलात्मक कृति मानी जाती है और यह न केवल बच्चों को बल्कि बड़ों के मन में भी सशक्त प्रभाव डालने वाला है। मैं भारत के अधिकाधिक बच्चों को 'हिरोशिमा का दर्द' का परिचय देना चाहती हूं। आतंकवाद, परमाणु बम आदि के भय को देखें, तो जाहिर है, आज न केवल भारतीय बच्चों का, बल्कि विश्व भर के बच्चों का जीवन युद्ध से ज्यादा दूर नहीं है। संसार के भविष्य में विश्व शांति की स्थापना आज के बच्चों पर पूर्ण रूप से

निर्भर रहती है। 'हिरोशिमा का दर्द' अंग्रेजी, चीनी, रूसी आदि १४ भाषाओं में अनूदित होकर २० से अधिक देशों में प्रकाशित हो चुकी है। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा भारत के अन्य भाषाओं में भी 'हिरोशिमा का दर्द' का अनुवाद हो रहा है। आज के युग में विश्व भर के बच्चों के लिए 'हिरोशिमा का दर्द' एक अनिवार्य पुस्तक बन रही है। यह पुस्तक न केवल जापान की महत्वपूर्ण संस्कृति का परिचय भारत के पाठकों को देती है, बल्कि दोनों देशों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया को भी आगे बढ़ाएगी। मेरा विश्वास है कि यह 'हिरोशिमा का दर्द' भारत और जापान दोनों देशों में शांति की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।❑

गुड़गांव, हरियाणा
मो.-९८१०१०१६६०

हिरोशिमा का दर्द

छह अगस्त, १९४५ की सुबह आठ बज कर पन्द्रह मिनट पर जापान के हिरोशिमा में एक भयावह, आंखों को चौंधा देने वाली चमक लोगों को चीर कर निकल गयी। दरअसल वह एक परमाणु बम था, जिसे मानव इतिहास में पहली बार किसी पर गिराया गया था। बहुत-से लोग घायल हुए और असंख्य लोगों का देहान्त हुआ। इन्हीं बेबस लोगों में एक नन्हीं-सी लड़की भी थी। सात साल की, नाम था मीचन। इस सचित्र पुस्तक में प्रस्तुत है कि हिरोशिमा में जब परमाणु बम गिरा तब मीचन की मां को कैसे नरक जैसे शहर में इधर-उधर भागना पड़ा, वह भी अपनी बेटी को बचा कर, साथ ही अपने घायल पति को अपनी पीठ पर उठाते हुए। सुश्री तोशि मारुकि 'परमाणु बम का चित्र' की चित्रकार के रूप में अत्यंत मशहूर हैं, जिसमें परमाणु बम की तबाही के यथार्थ का चित्रण है। उन्होंने अपने पति, चित्रकार श्री इरि मारुकि के साथ इस सचित्र पुस्तक 'हिरोशिमा का दर्द' को तैयार किया है। इस पुस्तक के साथ उनका संदेश और प्रार्थना यह है कि हमें इस तरह के परमाणु बम की त्रासदी को फिर कभी दोहराना नहीं चाहिए।

डॉ. तोमोको किकुचि ने भारत में रह कर एम.ए. (हिन्दी) और उसके बाद महादेवी वर्मा पर पीएच.डी. की। उन्होंने कई पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं और वे जापानी से हिन्दी में सिद्धहस्त अनुवादिका हैं। ❑

अनुभूति के पल में **शांति बापना** की कविताएं संकलित हैं।

ये कविताएं उनके जीवन के विविध खट्टे-मीठे अनुभवों पर टिप्पणी करती अथवा उनके बारे में उनकी राय व्यक्ति करती कविताएं हैं। कहा जाता है कि कविता कोरा वक्तव्य नहीं है। उसमें भाव भी है, लय भी है, ताल भी है। **शांति बापना** ने पूरी सजगता एवं तल्खी के साथ इन कविताओं को रचा है।

कोई कविता बेटी को संबोधित है तो कोई स्त्री को, कोई देश के सेनानी को अथवा कोई जिन्दगी को।

निराला की सुप्रसिद्ध कविता **जागो फिर एक बार** जैसे शीर्षक से **शांति जी** ने नयी कविता रच डाली है। यह कविता **कृष्ण** के नाम संबोधित है, मगर शीर्षक के कारण पाठक को **निराला** की ही याद दिलाती है। किसी भी कवि को शब्दों के ऐसे लोभ का संवरण कर ही लेना चाहिये।

अधिसंख्य कविताएं छात्रों एवं किशोरों के नाम प्रेरक संदेश भी देती हैं और कई कविताओं में कटाक्ष भी है।

पुस्तक को साज-सज्जा के साथ प्रकाशित किया गया है। शांति जी की हर कविता में पूरी कविता बन जाने की सारी संभावना छिपी बैठी है। आशा है पाठक इन्हें पसंद करेंगे। और उपयोगी भी पायेंगे। ❑ **सं.**

शांति बापना
सम्पर्क -२६, कृष्णा नगर, भरतपुर
मोबाइल नं. ९३१४७६००४०

भारतीय छात्रों का पिछड़ापन

❑

डॉ. लक्ष्मीनारायण मित्तल

बच्चे किस प्रकार और कितना सीखते हैं इसका एक सर्वेक्षण गत दिनों **प्रोग्राम फॉर इन्टरनेशनल स्टूडेन्ट एसेसमेंट रिपोर्ट** (पिसार) में किया गया था। इसमें ७३ देशों के बच्चों का मूल्यांकन किया गया। दुर्भाग्य से इसमें भारतीय बच्चे नीचे से दूसरे स्थान पर रहे । वे ७२ वें स्थान पर रहे। प्रथम की शिक्षा की वाणिकी में भी ऐसे परिणाम आये हैं कि कक्षा ५ के बच्चे कक्षा २ के लिए निर्धारित न्यूनतम अध्ययन स्तर को प्राप्त नहीं कर पाते।

देश के सर्व शिक्षा अभियान में एक लाख करोड़ रुपयों के प्रावधान के बाद भी स्थिति में कोई ज्यादा बदलाव दिखलाई नहीं पड़ता।

यह नहीं है कि देश के नीतिकारों को इस रणनीति के कारणों का पता नहीं है। देश के म्यूनिसिपेल्टी या जिला परिषद के स्कूलों से लेकर अच्छे साधन संपन्न स्कूलों तक में रटने पर जोर दिया जाता है। शिक्षा तो स्वयं में माध्यम है और स्कूली किताबें उस माध्यम का माध्यम। परन्तु अब कोर्स पूरा कराने के चक्कर में पाठ्य-पुस्तकें प्रधान हो गयीं।

शिक्षा सूचना मात्र रह गयी। मान्यता के स्थान पर 'समझ' पर जोर देना बंद कर दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि व्यावहारिक बुद्धि का बच्चे में अभाव हो गया है। उसे नीम के पत्ते और पीपल के पत्तों के आकार का ज्ञान नहीं है। वह बरगद के पत्ते को पीपल के पत्ते से अलग करके नहीं बतला सकता। उसके स्कूल के प्रागंण में खड़े पेड़ की लगभग ऊंचाई का उसे अंदाजा तक नहीं है। यातायात के पाठ में उसे 'नाव और जहाज' का अन्तर नहीं पढ़ाया जाता, अपितु भारत के जल मार्गों की तो चर्चा होती है, परन्तु नदी पार करने के देशी साधनों पर कोई चर्चा नहीं होती और बच्चे को जीवन की वास्तविकता का भान नहीं हो पाता।

शिक्षा के अधिकार कानून के बाद भी बहुत बड़ी संख्या में मां-बाप अपने बच्चे को प्राइवेट स्कूलों में भेज रहे हैं। ऐसे स्कूलों में भी पढ़ाई का स्तर बेहतर होगा, इसकी कोई गारन्टी नहीं है क्योंकि ऐसे स्कूलों में भी अच्छे योग्य अध्यापकों का अभाव है। एक तो, वेतन कम है दूसरे कस्बाई शहरों में योग्य शिक्षक मिलते भी नहीं। पिछले दिनों मध्यप्रदेश में शिक्षकों के लिए **'पात्रता परीक्षा'** का आयोजन किया गया था। इसमें चुने हुए शिक्षक भी संविदा पर नियुक्त होंगे। मुरैना शहर में ही लगभग ४० हजार भावी शिक्षकों ने इसमें भाग लिया जिनमें से १० में से ९ को कम्प्यूटर-शीट पर गोला बनाना नहीं आया। वे प्राय: ग्रामीण इलाकों के तथाकथित अंग्रेजी माध्यम स्कूलों से पढ़कर आये हैं। इन्हें ही **'पोपटलाल कान्वेन्ट स्कूल'** कह सकते हैं।

अनेक भाषाशास्त्रियों का मानना है कि ग्रामीण बच्चों को जो घर में मानक भाषा के अतिरिक्त कोई और बोली बोलते हैं उनके लिए मानक हिन्दी ही द्वितीय भाषा है और अंग्रेजी तृतीय भाषा। ऐसे में नर्सरी कक्षा से अंग्रेजी को माध्यम बनाना बच्चे के नैसर्गिक विकास में बाधा पहुंचाना है। प्राय: बच्चे को मातृभाषा पर पूर्ण अधिकार हो जाये और उस भाषा के माध्यम से विज्ञान, गणित और समाज विज्ञान पढ़ायी जाये तो उसे आधारभूत तर्क ठीक से समझ में आ जायेंगे। अनेक शिक्षा शास्त्री मानते हैं कि भारत में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के गिरते स्तर का

एक कारण यह भी है कि कक्षा एक से अंग्रेजी को अनिवार्य कर दिया गया है।

यूं भाषा स्वयं में माध्यम है परन्तु भाषा के दृढ़ीकरण में भाषा हमारे विचारों को भी सीमित कर देती है और हमें उतना ही सोचने के लिए सक्षम बनाती है जितना भाषा का वितान। फैलाव होता है। एक अध्ययन से पता चला है कि कस्बाई बच्चे के पास कक्षा एक में मात्र ५०० शब्दों का भण्डार होता है जबकि उसी उम्र के आभिजात्य स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के पास २००० शब्दों का भण्डार होता है।

एक सैकिण्ड में एक शब्द को समझने (उसके अर्थ को प्राप्त करने) की क्षमता कक्षा एक के विद्यार्थी की होनी चाहिये। आम तौर पर भारतीय ग्रामीण या कस्बाई क्षेत्रों से आये बच्चों की ऐसी क्षमता नहीं होती। विकसित देशों को छोड़ दे तो भारत से ज्यादा पिछड़े देशों ने अपनी शिक्षा-नीति को अधिक व्यावहारिक बना लिया है और स्थानीयता और अपनी परम्परा से जुड़ाव करते हुए अपनी शिक्षा पद्धति में यथोचित परिवर्तन ला दिया है। परन्तु भारत में शिक्षा को 'समझ' से न जोड़ कर उसे संसाधन मान लिया गया है। विकास शब्द में गहराई के स्थान पर फैलाव का मुद्दा मान लिया गया है। अत: हमें यह तो चिन्ता है कि प्राथमिक स्तर पर स्कूली बच्चों की नामांकन दर बढ़ जाये, पर शिक्षण पद्धति में नि:शुषक रटने को बन्द नहीं किया गया है।

अमेरिका में जिसे 'पीटर्स प्रिन्सपिल्स' कहते हैं, भारतीय शिक्षा की भी कुछ ऐसी ही दुर्दशा है। अक्ल का प्रयोग कम और कण्ठ सुधार पर अधिक जोर। इसका कुल परिणाम यह है कि भारत के बच्चे विश्लेषणात्मक प्रज्ञा, व्यावहारिक ज्ञान और तार्किक विश्लेषण में अन्य देशों के बच्चों की तुलना में बहुत नीचे हैं।

इस लेख में मनीषी टिप्पणीकारों से

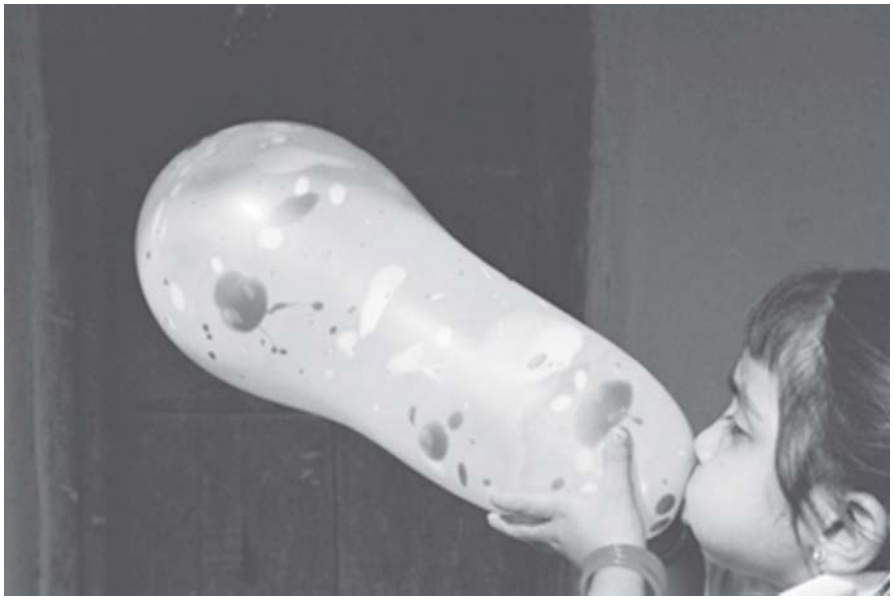

उक्तियां उल्लेख नहीं की गई हैं। मामूली सी बात कहने के लिए गंगाजल लेकर शपथपूर्वक कुछ कहने की जरूरत नहीं है। परन्तु देश के राजनीतिज्ञ **'जुगाड़'** में लगे रहते हैं। तथाकथित सिविल सोसायटी को आर्थिक अनीति में ही भ्रष्टाचार नजर आता है। शिक्षा के साथ नीतिकारों और तथा कथित विद्वतजनों का खिलवाड़ देश का सबसे बड़ा भ्रष्टाचार है। ❑

एच-८८३, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, मुरैना

कृपया अनौपचारिका से दोस्ती करें

❑

मैत्री समुदाय

यह समुदाय अनौपचारिका के मित्रों का समुदाय है। ऐसे मित्रों का जो इसे स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। उनका जो इसे पांवों पर खड़ा करना चाहते हैं। उनका जो इस पत्रिका को सामाजिक एवं सामुदायिक सहयोग से संपन्न होने वाला सफल आयोजन बनाना चाहते हैं। ऐसे प्रेमी मित्रों का एक विशद समुदाय बनाना हमारा सपना है। क्या आप इस मैत्री परिवार के सदस्य हैं ? यदि नहीं हैं तो कृपया शीघ्र बनिए। हमारे सपने को साकार करने में सहयोग दीजिए। चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट से रुपये एक हजार पांच सौ अथवा उससे अधिक श्रद्धानुसार शीघ्र भिजवाइए। ड्राफ्ट या चैक राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर अथवा अंग्रेजी में

Rajasthan Adult Education Association के नाम हो।

हमारा पता है -

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४

हम अनौपचारिका के हर पाठक एवं हर सहयोगी संस्था से अपील करते हैं कि मैत्री-समुदाय की सदस्यता शीघ्र ग्रहण करें। सादर। ❑ **संपादक**

शिक्षा के सच की तलाश

❑

डॉ. अवध प्रसाद

दिसम्बर के अंक में वरिष्ठ शिक्षा शास्त्री रमेश थानवी अपने संपादकीय में शिक्षा के सच की तलाश कर रहे हैं। संपादकीय पढ़ने से ऐसा लगता है कि एक प्रबुद्ध शिक्षा शास्त्री को आज की शिक्षा का सच अभी तक नहीं मिला है। यह सच भी है। सामान्य जन को भी आज की शिक्षा में सच नहीं मिलता है। मुझे भी नहीं मिला। सामान्य जन एवं अभिभावक संभवत: शिक्षा का सच जानना चाहते भी नहीं या जानते हुए भी उससे मुक्ति नहीं चाहते हैं। परन्तु एक शिक्षाविद् यह प्रश्न उठाता है तो यह चिंता का विषय है। प्रश्न उठता है कि यदि सच का ही पता नहीं तो उसका परिणाम भी अंधेरे में है। बिना रास्ते जाने एवं लक्ष्य को जाने, कहां पहुंचेंगे ? शायद कहीं नहीं। जिन्दगी भर पीढ़ी दर पीढ़ी भटकते ही रह जायेंगे। जो भी हो, संपादकीय चिंतनीय हैं, चिंता का विषय है। शिक्षा शास्त्री सोचें, विद्वान सोचें, सामान्यजन तथा अभिभावक सोचें यदि संभव हो तो राजनेता और प्रशासक सोचें जिनके हाथ में सत्ता और संपत्ति सिमटती जा रही हैं।

इस सोच को आगे बढ़ाने में शायद अतीत का स्मरण कुछ मददगार हो सकता है। ज्यादा अतीत में जायें तो गुरु-शिष्य परम्परा, ऋषियों द्वारा संचालित शिक्षा जिसमें ज्ञान सबसे बड़ा दान माना गया है। कहा गया ज्ञान देने से बढ़ता है-घटता नहीं। जो भी आये उसे मुक्त भाव से ज्ञान का दान करो। पर यह अतीत की बात हो गयी है। पिछले सौ-दो सौ साल में भी शिक्षा के सच को धरती पर लाने के कई प्रयोग हुए-प्रयास हुए। शायद उनका स्मरण सच को खोजने में मददगार हो। ज्यादा पुरानी बात नहीं जब विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन की स्थापना की और 'शिक्षा के सच' को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी। वृक्ष की छाया में गुरु-शिष्य के आपसी संबंध को मजबूत किया। वहां से शिक्षित छात्र आज भी स्मरणीय हैं-पूजनीय हैं। जब गांधीजी ने सेवा ग्राम में नयी तालीम शुरू की उसमें शान्ति निकेतन के शिक्षक एवं छात्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें तीन नाम का स्मरण किया जाना चाहिए- १. ई.डब्ल्यू.आर्यनायकम, २. इनकी पत्नी श्रीमती आशा देवी ३. कला के मरमज्ञ श्री देवी प्रसाद जिन्होंने कला को मिट्टी से संवारा और शिक्षा में कला को नया आयाम दिया। दूसरा प्रयोग महर्षि अरविन्द एवं श्री मां द्वारा पांडेचेरी के 'अरविन्द आश्रम' में किया है। वहां उपाधि के बंधन से मुक्त शिक्षा प्रत्येक छात्र को अलग पहचान देती है। वह किसी प्रमाण पत्र या उपाधि का मुहताज नहीं होता। अरविन्द आश्रम में शिक्षित हुआ है यह जानना उसके लिए पर्याप्त है। वहां का ओरोविल की कल्पना शिक्षा एवं मित्र समाज का प्रतीक है जहां ज्ञान, सद्भाव, विज्ञान एवं सामुदायिकता (सहभागिता) की व्यवस्था कायम करने की कल्पना की गयी - प्रयास किया गया। दोनों 'शिक्षाकुल' शिक्षा के सच को समझने में मददगार हो सकते हैं। इसी क्रम में तपस्वी जे.कृष्णमूर्ति का स्मरण होना स्वाभाविक है। उनकी मौजूदगी में कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन में शिक्षा के प्रयोग किये गये-आज भी किये जा रहे हैं।

गांधी ने शिक्षा के सच को समझने का प्रयास किया और इसी प्रयास में नयी तालीम या बुनियादी तालीम की शुरुआत की। उनके मार्गदर्शन में सेवाग्राम में नयी तालीम विद्यालय प्रारम्भ हुआ जिसमें मुख्य भूमिका ई.डब्ल्यू. आर्यनायकम एवं श्रीमती आशा देवी की रही। गांधीजी वैज्ञानिक थे-योजनाकार थे। उनका प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक शोध पर आधारित होता था-व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध होता था। तभी तो उन्होंने डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में पाठ्यक्रम समिति गठित की पाठ्यक्रम तैयार कराया। वह पाठ्यक्रम एवं प्रयोग पठनीय है, स्मरणीय है। नयी तालीम का काम आगे बढ़ा और गिजुभाई जैसे शिक्षा शास्त्री ने तो

उसे बालक, अभिभावक एवं शिक्षक को ज्ञान की गहराई प्रदान की। उनकी कथा, कहानी एवं पाठ्यसामग्री अपने आप में शिक्षा के सच को प्रस्तुत करता है। गांधी की शिक्षा को आगे बढ़ाने में गुजरात के कुछ विद्यालय अग्रणी रहे। एक प्रयोग श्रम भारती खादी ग्राम में श्री धीरेन्द्र मजूमदार एवं आचार्य राममूर्ति ने किया। उसका स्मरण इस कारण सामयिक लगता है क्योंकि मुझे बचपन में एवं युवा काल में वहां शिक्षा पाने का अवसर मिला। वहां का पाठ्यक्रम एवं दिनचर्या श्रम, स्वाध्याय, समानता एवं संस्कार आधारित था। गुरु-शिष्य का संबंध पारिवारिक रिश्तों से संबोधित होते थे। गुरु, भाई, चाचा, मौसा, मौसी आदि संबंधों से संबोधित होते थे। श्रम एवं दिनचर्या सबके लिए समान थे। श्रम एवं व्यवहारिक ज्ञान शिक्षा का माध्यम था। इसके एक-दो उदाहरण पर्याप्त हैं। बाल्टी में रखे शौच की सफाई एवं शौच से तैयार गैस का उपयोग सफाई के शिक्षण की पराकाष्ठा थी। हम सबके गुरु श्री धीरेन्द्र बाबा ने सफाई की व्याख्या इस रूप में की थी - स=सभी चीजों का, फा=फायदेमंद, ई=इस्तेमाल=सफाई। शरीर विज्ञान के शिक्षण का एक प्रसंग आज भी याद है-पास के जंगल के बाघ ने आश्रम की गाय को मार दिया था। गुरुजी ने उसका पूरा शरीर चीर कर उसके अंगों की जानकारी दी थी। पशु का चीरा हुआ विभस्त शरीर आज भी आंखों के सामने है। इसी प्रकार बचपन में पशु हड्डी की खाद 'बोन डाइजेस्टर' में बनते देखा। वनस्पति विज्ञान में पौध के अंगों की जानकारी प्रत्यक्ष दिखा कर दी गयी। यह शिक्षा का अभिनव प्रयोग था जो शिक्षा के सच को समझने में मददगार हो सकता है।

संपादक ने सच्ची शिक्षा के चार मापदंड गिनाये हैं-१. बालक को जन्म से मिली प्रतिभा की खोज, उसकी पहचान २. शिक्षा व्यक्ति को अभय बनाती-भयमुक्त करती है ३. शिक्षा युवक को जिज्ञासु बनाती-खोजी वृत्ति का विकास करती है। ४. शिक्षा सहजीवन सिखाती है। आज की शिक्षा में इनका अभाव देखा जा सकता है। इस स्थिति में इसे सच्ची शिक्षा नहीं कह सकते हैं। आज की शिक्षा का सच यह है कि वह सच्ची शिक्षा की गाड़ी को गलत पटरी पर ले जाती है। शिक्षा लाभकारी व्यापार बन गयी है। कुछ दशकों पहले तक शिक्षा दान एवं ज्ञान का स्तम्भ या उसका स्थान थी। राजस्थान के दूर दराज के क्षेत्रों में संपन्न व्यक्तियों ने शिक्षण शाला की स्थापना की थी वे आज भी स्मरणीय है। शेखावटी क्षेत्र के कई शिक्षण केन्द्र इसके उदाहरण हैं। ये केन्द्र शिक्षा के व्यापार के केन्द्र नहीं थे। शिक्षा को व्यापार बनाना सच्ची शिक्षा की खोज में बड़ी बाधा है।

इन संभावनाओं एवं समस्याओं के बीच सच्ची शिक्षा की खोज का प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। फिर भी खोज की संभावना लुप्त नहीं होती है। विपरीत परिस्थिति में भी सच की खोज ही उज्जवल भविष्य की ओर ले जाती है। शिक्षाविदों से यह अपेक्षा रखना स्वाभाविक है कि वे शिक्षा के सच की खोज करते रहें। ❑

विनोबा ज्ञान मंदिर, बापू नगर, जयपुर

बाल पत्रिका और मैं

कोई बाल पत्रिका उठाता हूं
जब कभी हाथ में
लौट पड़ता हूं पीछे
बहुत दूर अपने अतीत में

उभरते हैं-
दृश्य दर दृश्य अनेक
मानस पटल में

पार्क, सीसा, झूला
धूल से सने कपड़े
सितोलिया और लुकाछिपी के खेल
आज कुट्टी और कल फिर मेल

मां का दुलार, पिता की फटकार
कितनी ही उछलकूद,
बस्ते का बोझ
होमवर्क का टेंशन और
गुरुजी की डांट और
कभी पिकनिक की ठाठ।

याद आता है,
और भी बहुत कुछ अपना
कोमल बचपन और
वह मनमोहक संसार
जिसे पा नहीं सकते अब
करने पर प्रयत्न हजार।❑

एक अध्यापक की डायरी के कुछ पन्ने से साभार
प्रकाशक : अजीम प्रेमजी फाउंडेशन

बाप ब्लॉक में कार्य कर चुके विभा उपाध्याय, रहमतुल्ला व राजेश उपाध्याय ने भी अपने अनुभव व्यक्त किए।

उद्घाटन के अवसर पर एसडीएम दलवीरसिंह ढढा, उप प्रधान जगदीश पालीवाल, बीईईओ रामसुख व्यास, बाप के सरपंच भगवानदास कुमावत, पंचायत समिति सदस्य गुलाम रसूल, पूर्व पंचायत समिति सदस्य भंवर कंवर, दूसरा दशक के अतिरिक्त निदेशक रागवेन्द्रदेव शर्मा उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन परियोजना निदेशक मुरारीलाल थानवी ने किया। ❑

संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक रमेश थानवी के लिए कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित

रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका | RNI 43602/77

पहले एवं चौथे आवरण के छायाकार : के.आर. शर्मा